द्धयोग

वर्ष-२६ : अंक-१ : अप्रैल १९९३

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

द्रगुफा प्रकाशन, सँवाई, आगरा

प्रकाशक :
श्री देवीप्रसाद शर्मा
'दिव्य'
कृते श्री सिद्धगुफा
प्रकाशन
सवाई, आगरा

सम्पादक
श्री 'दिव्य'

अप्रेल
1993

इस अंक में पढ़िए

लेख	लेखक	पृष्ठ
★ स्थितप्रज्ञ	....	1
★ जन्म एवं बाल्यकालीन दिव्यानुभूतियाँ —योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन महाराज	....	2
★ जीवन और उसकी मर्यादायें (सम्पादकीय)	....	5
★ रमता जोगी बहता पानी —योगी रमतराम	....	7
★ चैत्र शुक्ला रामनवमी (योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज का अवतरण दिवस) —ब्र. श्री ओमप्रकाश पालीवाल	....	9
★ अन्य धर्मों की भाव-साधना —श्री रामकृष्ण मिशन के सौजन्य से	....	17
★ भारतीय धर्म और जीवन की विशेषताएँ —श्री वेदव्रत शर्मा	....	20
★ गुणवान बनो —श्री विष्णुप्रसाद व्यास	....	21
★ राष्ट्र को वीर-भावना की आवश्यकता —श्री वेदव्रत शर्मा	....	25
★ समाधि के लिए सात प्रतिबन्धक स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज	....	27
★ त्रिगुणा प्रकृति और सृष्टि-प्रक्रिया का रहस्य —महामहोपाध्याय गोपीचन्द कविराज	....	29
★ हम क्या करें —श्री रवीन्द्रनाथ झा	....	32
★ साधना सिद्धि गुरु कृपा सापेक्ष है ! —आचार्य श्री दासलालजी	....	33
★ योगी बालकृष्ण दास वैरागी —अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	....	37
★ मोक्ष का साधन वैराग्य —एक योग साधक	....	41
★ करुण पुकार —श्री जनकप्रसाद द्विवेदी	....	46

वार्षिक मूल्य 55 रुपया। एक अंक का मूल्य 6 रुपया

योग-योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा नवांई (आगरा)

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एमादपुर) आगरा

वर्ष २६

अङ्क १

अप्रैल

१९९३

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्नु च विचरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थाद् बहुविधं योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणाप्त्यै भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

॥ स्थितप्रज्ञ ॥

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

—गीता 2–55/56

अर्थात्

श्री भगवान ने कहा, हे पार्थ, जब मन के भीतर घुसी सभी कामनाओं को जड़मूल से खत्म कर देता और आत्मा ही—अपने से ही—खुदबखुद सन्तुष्ट रहता है तभी उसे स्थितप्रज्ञ या अचलबुद्धि वाला कहते हैं।

दुखों से जिसका मन उद्विग्न न हो सके, सुखों (की प्राप्ति) के लिए जो परेशान न हो और राग, भय एवं द्वेष, क्रोध, ये तीनों ही—जिसके बीत गये या खत्म हो चुके हों वही मननशील मुनि स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

विशेष लेख :-

योग-योगेश्वर
अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी
महाराज

[प्रस्तुत लेख श्री गुरुदेवजी की स्वलिखित 'जीवन-दर्शन' नामक पुस्तक से हमें ब्रह्मचारी श्री दासलाल शर्मा के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। यह पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है तथा इसका मूल्य २५ रुपये मात्र है। जो भाई-बहन इस नवीन पुस्तक-रत्न को खरीदने के इच्छुक हों वे श्री दासलाल शर्मा से सवाई आश्रम पर सम्पर्क स्थापित करके प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ही रक्खा गया है। सम्पादक]

श्री गुरुदेवजी के स्व-लिखित जीवन-दर्शन से।—

जन्म एवं बाल्यकालीन— दिव्यानुभूतियाँ

□

इस जन्म के बाबत में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जिला करनाल की तहसील पानीपत से बारह या चौदह मील की दूरी पर अहरकुराने के निकट एक छोटा सा गाँव अनुपुर नामक है जिसमें प्रधान जाति क्षत्रियों में रोड़ों की है एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि अन्य जाति के लोग भी अच्छी संख्या में यहाँ निवास करते हैं। इसी अनुपुर गाँव में मेरा जन्म हुआ। मेरा जन्म गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ मेरे पिता जी का नाम श्री पं. देवीराम जी शर्मा था। उनके छोटे भाई अर्थात् मेरे चाचा श्री पं. शिवनारायण शर्मा थे। श्री माता जी का नाम चरतो देवी था और इनका जन्म-स्थान निराणा नामक गाँव है। इनके सहोदर भाई आशाराम थे जो अब नहीं हैं। उनके चचेरे भाई जिनका नाम पं. मूलचन्द है वह अब भी उस गाँव में मौजूद हैं। श्री माता जी के संस्कार पौराणिक ढंग के थे, किन्तु मेरे श्री पिता जी एवं चाचा जी दृढ़तम् आर्यसमाजी विचारों के थे। मेरे पिता जी लाहौर में महात्मा-हंसराज और भाई परमानन्द के जमाने में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के एक योग्य व कुशल उपदेशक भी रहे। यही मुझे पिता रूप में प्राप्त हुये और मेरे मन में भी श्री पिता जी ने ऐसी ही धारणायें दृढ़ कीं, जिनका मेरे मन पर अब तक भी ज्यों का त्यों प्रभाव कायम है। जन्म लेने के बाद मुझे क्या और कैसी-कैसी अनुभूतियाँ होती रहीं, वह इस लेख में, मैं सत्य-सत्य लिखता हूँ।

जन्म लेने के बाद मुझे अपने बाल्यकाल में दो-तीन या चार वर्ष की आयु में ही विशेष-विशेष प्रकार की अनुभूतियां होती रहीं। जिनमें आनन्दकन्द अखिलात्मा त्रिजगतपावन भगवान श्रीकृष्ण का अनुग्रह बहुत ही विशेष था—जिनको, यह कौन है कितने प्यारे हैं यह मेरी पहचान से बाहर था। उनकी कृपा के अनुभव मुझे चलते-फिरते उठते-बैठते होते थे। कई एक बार तो मैंने अपनी बचपन की भाषा में, मेरी माता जी भी उनको देख रही होंगी यह समझकर हरियाणा की प्राकृत भाषा में मैंने पूछा—

माँ ! यह किसका छोरा है ? यह तो बहुत ही सुथरा (सुन्दर) है, इतना पूछने पर माता जी कहतीं 'नहीं बेटा, यहां किसी का छोरा नहीं तू खेल ।' माताजी के ऐसे कहने पर मैं चुप हो जाता किन्तु अखिलात्मा की कृपा बराबर बनी रही । मेरे सिर पर पहनाने के लिए मेरी माताजी ने एक लम्बा जैसा पीछे लटकने वाला टोपा सा बनवा दिया था, जिसको वहाँ की भाषा में फरगल कहते थे । मैं उस फरगल की लम्बाई का मिलान किया करता था और अपनी माता जी से कहा करता था कि "माँ इसका फरगल बहुत सुथरा है ।"

माता जी कहती "नहीं बेटा फरगल तो तेरा ही अच्छा है । यहाँ कोई और लड़का तो फरगल पहनता ही नहीं ।' किन्तु फरगल पहनने वाले के विषय में श्री माता जी कुछ नहीं समझ पाती थी ।

जिस फरगल पहनने वाले के विषय में मैं जिक्र करता था वह और था किन्तु श्री माता जी गाँव की मेरी उम्र के तीन चार वर्ष के अन्य बच्चों को समझती थीं । जिस समय मैं रात को सोया करता था, उस समय भी मुझे कई प्रकार की अनुभूतियाँ होती रहती थीं जो मेरे कहने से बाहर है । सर्दी के दिनों में श्री माता जी मुझे रजाई उढ़ाकर सुला देतीं थीं—और अपने आप घर के अन्यान्य कामों में लग जाया करती थीं । उस समय मैं माता जी से कहा करता था कि "माँ ! मैं तो बहुत चाँदने में सो रहा हूँ । देख ! एक चाँद, यह आ गया, एक चाँद वह आ गया ? और सबसे बड़े चाँद वही त्रिजगत पति थे जिनके प्रकाश से सारा घर-आँगन भरा रहता था । इसके अतिरिक्त वही प्रकाश जब आकाश में फैला हुआ दिखाई देता उस प्रकाश में मैं इधर-उधर घूमा व विचरा करता था । मालूम पड़ता था कि उस रोशनी में मैं इधर-उधर भाग रहा हूँ । अलुपुर गाँव से बाहर एक तालाब है जिसको गाँव वाले खारे वाला जोहड़ कहते थे । इसके साथ में ही सय्यद नामक किसी मुसलमान पीर का भी स्थान है । इस सारे आकाश मण्डल में और जंगल में मैं तेज ही तेज को बिखरा देखता था । और किसी तालाब, कूप या पीर-पैगम्बर के स्थान की कोई अनुभूति नहीं होती थी । अकसर आकाश-गमन के स्वप्न मुझे अधिक मात्रा में आते रहते थे ।

एक बार इन सब बातों का मैंने श्री प्रभु जी के चरणारविन्दों में जिक्र किया, तो श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया यह 'आकाश-गमन की सिद्धि है। जन्म जन्मान्तर के संस्कार वश ऐसा दीखता है। कालान्तर में यह सिद्धि तुम्हें प्राप्त हो जावेगी।' मैंने श्री प्रभु जी से पूछा, प्रभु जी यह सिद्धि कब हो जावेगी? इसका उत्तर श्री प्रभु जी ने दिया 'यह सब समय की बात है। समय ही बतावेगा।' वस्तु, इसी प्रकार की अनुभूतियों में मेरा बाल्य-काल निकलता रहा। बचपन में मुझे मक्खन का खाना बहुत ही अच्छा लगता था। उसको हरियाणा की भाषा में टिण्डी भी कहते थे। हमारे मकान में एक छोटा सा होल था जिसको उस भाषा में आला कहते हैं जिसमें से मैं मुड्ढे और पीढ़ियाँ लगाकर के माता जी का रक्खा हुआ मक्खन निकाल लेता था। माता जी यह सब देखकर नाराज होती थीं किन्तु पिता जी कुछ नहीं कहते थे।

हम समझें अपनी विराट चेतना को

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम. एड.

सामान्यतया हम ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का उपयोग जीवन में प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं। इन इन्द्रियों की शक्तियों में भी न्यूनाधिकता दृष्टिगोचर होती है। कोई अधिक बलवान, शक्तिशाली, कुशलकर्ता है तो कोई दुर्बल, रेंग-रेंग कर चलने वाला एक प्राणी है। इन शक्तियों के विकास के परिणाम हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि मनुष्य के पास मात्र दैहिक एवं ऐन्द्रिक चेतना से अधिक अतीन्द्रिय तथा बुद्धिमनसातीत अविच्छिन्न चेतना है जिसे उपनिषद् की भाषा में 'भूमा' में ही शाश्वत सुख तथा दिव्य ज्ञान तथा स्वबोध है। इन्द्रिय सर्वांगीण चेतना अल्प सुख तथा मृत्यु के भय से सदा आक्रान्त है। उससे भिन्न चेतना विराट चेतना है जो गीता में वर्णित 'अविभक्तं विभक्तेषु यः पश्यति स पण्डितः' अर्थात् देश, जाति, कुल, नामरूप, शरीर में अनुस्यूत अखण्ड चेतना के रूप में दर्शन का विषय बनती है तथा जिसका साक्षात्कार होने पर ही व्यक्ति सही मानें में सर्व धर्म समभाव, मानवतावाद तथा समाजवाद का जीवन्त उदाहरण बनता है।

जीवन और उसकी मर्यादायें

वैदिक सिद्धान्तों और मर्यादाओं की सीमाओं के अन्तर्गत जब तक मानव-जीवन की सरिता बहती रहती है तभी तक लोक के लिए उसकी सार्थकता और उपयोगिता बनी रहती है। लेकिन सिद्धान्तों और मर्यादाओं के किनारों को लांघकर जब यह अमर्यादित होकर बहना शुरू कर देती है तब लोक-हित के स्थान पर लोक-हित के विनाश का कारण बन जाती है। इसीलिए सिद्धान्तों और मर्यादाओं की सीमाओं का अतिक्रमण न करने का परामर्श हमारे आचार्यों और दिशा-बोधक मनीषियों ने लोगों को दिया है। प्रकृति में भी सर्वत्र यही नियम दृष्टिगत होता है। वृक्ष, वनस्पति और पादप सभी अपनी नियत मर्यादाओं से आगे नहीं बढ़ते। सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्र सभी अपने निर्धारित और मर्यादित मार्ग पर ही चलकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते आ रहे हैं।

जलों का आगार समुद्र भी कभी अपनी सीमा या मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर पाता। भगवान श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भगवत गीता में उन्हीं को श्रेष्ठ पुरुष बताया है जो अपने आचार और व्यवहार में जीवन के सिद्धान्तों और मर्यादाओं की सीमा-रेखाओं का अतिक्रमण नहीं करते। यद् यद् आचरति श्रेष्ठस्तत् तत् एव इतर जनाः यानी श्रेष्ठ जन जैसा-जैसा आचरण करते हैं उन्हीं का अनुसरण दूसरे लोग किया करते हैं। गीताकार का यह उपदेश इसी सत्य का प्रतिपादन करता है कि आचार-विचार और व्यवहार की मर्यादाओं का पालन करने वाले व्यक्ति ही लोक-हित के प्रतीक हुआ करते हैं। उन्हीं को दैवी-सम्पदा वाला मनुष्य कहा जाता है। गीता में तो ऐसे मर्यादाशील पुरुषों को युक्त-पुरुष, सिद्ध-पुरुष, स्थितप्रज्ञ, ज्ञानयोगी, कर्मयोगी, जीवन-मुक्त और [illegible] आदि नामों से पुकारा गया है।

जीवन में सिद्धान्तों और मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले लोगों को तो गीता ने आसुरी सम्पत्ति वाला घोषित किया है। संसार के अनुभवों में रमण करने वाले भगवान राम को भी मर्यादा पुरुषोत्तम की संज्ञा दी गई है। इसीलिए दी गई है कि वे [illegible] किसी भी सिद्धान्तों और मर्यादाओं के अतिक्रमण की अनुमति नहीं देते। इसी को [illegible] अपना जीवन है और अपना धर्म है। मर्यादाओं की सीमाओं के अन्तर्गत रहते हुए ही उपनिषदों में वर्णित श्रेय पथ को पाया है। जो प्राणी को ब्रह्मलोक तक पहुँचाने का साधन बनती है। इसलिए मोक्षाभिलाषी पुरुषों को सदा मर्यादित जीवन व्यतीत करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

मर्यादापुरुषोत्तम राम और योग-योगेश्वर श्री कृष्ण का सारा जीवन ही मर्यादाओं के संरक्षण और उनकी स्थापना के प्रयासों में ही बीता। महापुरुषों के जन्म-दिवस हमारी परम्पराओं में इसीलिए अपना मुख्य स्थान रखते हैं कि हम भी अपने जीवन में उनके जैसे मर्यादित एवं सैद्धान्तिक जीवन के महत्व को समझें और उन्हीं के अनुसार इन्हें अपने आचरण में प्रतिष्ठापित करें।

चैत शुक्ला नवमी का मंगलमय पर्व जहाँ अपने देशमें भगवान राम की जीवन-मर्यादाओं का ध्यान दिलाने के लिए देश में श्री राम की अनुगामी जनता को प्रेरणा का स्रोत बनता है वहीं यौगिक-संसार में यह यौगिक मर्यादाओं को कायम रखने और अपनाने के लिए प्रभुवर श्री रामलाल जी की जयन्ती के रूप में सर्वत्र उत्साह से मनायी जाती है। अपने सद्गुरुदेव योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज अपने दीक्षागुरु श्री महाप्रभु की जयन्ती योग महामेला के रूप में अपने सवाई आश्रम पर बड़ी धूमधाम से मनाया करते थे।

गुरुदेवजी के प्रति अगाध श्रद्धा और निष्ठावान शिष्य में उत्तर भारत में यह अनुपम योग महामेला बहुत प्रख्यात हो चुका है। गुरुदेव के बाद भी यह योग मेला उसी रूप में सवाई आश्रम और उसके शाखा आश्रमों पर उसी उत्साह से मनाने का प्रयत्न होता रहा है। सभी साधक शिष्यों की यह इच्छा रही है कि गुरुदेव की ब्रह्मलीनता के उपरान्त भी आश्रम से योग-सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार उसी प्रकार होता रहे जैसा कि गुरुदेव के आगे होता था। इसीलिए विशाल योग आश्रमों की उन्होंने अपनी कठोरतम साधना से स्थापना की। सवाई ग्राम में विशाल आश्रम भवन यत्र-तत्र सार्वजनिक हित में अपनी कठोरतम साधना से निर्माण कर पाया। लेकिन कुछ ऐसे भी बंधु हैं जो श्री गुरुदेव की जीवन-साधना के समर्पण भाव को न समझकर अपने निहित स्वार्थों के लिए वस्तु स्थिति को वाद या व्यर्थवाद बनाने की चेष्टा कर रहे हैं वे योगी जीवन की मर्यादाओं का अतिक्रमण करके न तो आश्रम का कुछ भला कर पा रहे हैं न लोक-हित ही कर पा रहे हैं।

राम जन्म-जयंती की इस मंगलमय बेला में—चाहे वह मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम की जयन्ती हो या योगेश्वर प्रभु राम की जयंती हो, यह सोचना उन सबका काम है जो योग-साधनामय जीवन व्यतीत करने का संकल्प लेने को ही सवाई आश्रम पर आये थे। अब क्यों वे अपने गुरुवर की आध्यात्मिक सम्पदा को छोड़कर उनकी लोक हित में छोड़ी गई भौतिक सम्पदा पर अपनी गिद्ध दृष्टि जमाये रखने में अग्रसर हैं?

गुरुदेव का अपने प्रवचनों में बार-बार दुहराया गया यह उपनिषद् कालीन बोध न जाने क्यों हम सब अनसुना सा कर रहे हैं कि संसार में जो कुछ भी दृश्यमान है वह अपना नहीं है। यहां के कण-कण में ईश्वर वासित है, यह सब कुछ उसी का है अपना नहीं है। फिर पराई वस्तु को जो सत् नहीं असत् है क्यों अपनी समझकर उसे गिद्ध-दृष्टि से देखा जा रहा है। सब कुछ यहां प्रभु का है—उन्हीं के योग प्रचार सिद्धान्तों और मर्यादाओं की रक्षा एवं प्रचार-प्रसार में इसका सदोपयोग होना चाहिए।

यह कैसे हो? यह हमारे सबके मिल बैठकर सोचने का विषय है।

—सम्पादक

रमता जोगी बहता पानी

रमता जोगी, बहता पानी, दोनों की उद्घोषित बानी।
'चलने से जो रुक जाता है, कीचड़ बन जाता वह पानी ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति ।

गीता अ० 9/31

गीता के इस वाक्य को पढ़ और सुनकर एकान्तवासी बालक ने अपनी जिज्ञासा प्रगट करते हुए गीता प्रवक्ता से पूछा 'तनिक और अधिक विस्तार से बताइए कि जीवन भर पापों और दुष्कर्मों के ढेर पर बैठा हुआ पापी क्षिप्रभवति धर्मात्मा—यानी आनन् फानन में धर्मात्मा कैसे हो जाता है, और कैसे वह अखण्ड शान्ति को प्राप्त कर लेता है ? इतना ही नहीं भगवान श्री कृष्ण ने यह भी कहा है और प्रतिज्ञा-सी करते हुए कहा है कि न मे भक्ता प्रणश्यति' अर्थात मेरा भक्त, वह भक्त जो मुझे अनन्य भाव से भजने वाला मुझ में ही अपने अहं का समर्पण कर देने वाला होता है कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। कैसे यह हो जाता है आप समझाने की कृपा करें ?

× × ×

प्रवक्ता ने जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—सुनो यह सर्व सुलभ नियम है कि जब घोर दुष्कर्मों या पापों को करते-करते कर्त्ता का मन भर जाता है अथवा उसके दुष्कर्मों के फलों का गुरु-कृपा अथवा उनके सम्पर्क से भुगतान पूरा हो लेता है तब उसके उसी पापी मन में प्रभु की अनन्य भक्ति की कोई एक स्वर्णिम रेखा किसी भी निमित्त का आधार लेकर आ उदित होती है, जो उसे सन्मार्ग की ओर दृढ़ता से बढ़ने की प्रेरणा प्रदान कर देती है। फलस्वरूप वह उस पथ पर जब साधक चलना शुरू कर देता है तो फिर वह पुराने असत्मार्ग पर लौट आना पसंद नहीं करता।

× × ×

क्या तुम्हें नहीं मालूम कि ऋषि वाल्मीकि का प्रारम्भिक जीवन अपने परिवारीजनों से यह बोध पाकर एकदम बदल गया कि तुम जिन कर्मों को निमित्त बनाकर हमारा पालन-पोषण करते हो उनके प्रतिफल के भागी हम नहीं किन्तु तुम्हीं बनोगे। परिवारीजनों के इन्हीं वाक्यों के बोध से उनका शुष्क-जीवन पाप की तरफ से भरा था एकदम पलट गया और वे कालान्तर में लुटेरे से ऋषि वाल्मीकि बन गये।

× × ×

और सुनो मेरे प्यारे बालक—गोस्वामी तुलसीदास का भी प्रारम्भिक

जीवन भी तो एक दम—एक क्षण में बदल गया था अपनी पत्नी रत्नावली का यह बोध वाक्य सुनकर—

जितनौ हेत हराम सौं, उतनौं हरिसों होय।

चले जाउ बैकुण्ठ को, रोकि सकै ना कोय॥

यही पत्नी प्रबोधन तुलसी को सन्त शिरोमणि तुलसीदास बना देने का निमित्त बना था।

× × ×

इसे भी सभी जानते हैं कि महाकवि कालीदास को भी अद्वितीय काव्य शिरोमणि बना देने का श्रेय जाता है उनकी विदुषी पत्नी विद्योत्तमा की प्रताड़ना को। यदि वह उन्हें प्रताड़ित न करतीं तो कालिदास 'महाकवि कालिदास' के रूप में उजागर नहीं हो पाते।

× × ×

और सुनो! मीरा को 'प्रेम दिवानी मीरा' बनाने का निमित्त उनका वैधव्य ही तो बना था। दुर्दिनों का आघात भी मनुष्य को अनन्य प्रभु भक्ति की ओर ले चलने का निमित्त बन जाया करता है। मीरा के साथ यही हुआ।

× × ×

और सुनो—प्रभु को अनन्य भक्ति का जिसे अव्यभिचारिणी भक्ति भी कहा जाता है—सही-सही मूल्याङ्कन ब्रजगोपियों ने जैसा किया और जाना था वैसा क्या कोई और जान या समझ पाया है? उनके भक्ति पूर्ण मूल्याङ्कन के आगे ऊधो का सारा ज्ञान ही धूल-धूसरित हो गया था!

× × ×

और सुनो—अनन्य भक्ति के प्रयत्नों का बीज जब साधक या भक्त की हृदय भूमि पर उग जाता है तब समय पाकर उसे विशाल वट वृक्ष बनने में देर नहीं लगती। उसकी जड़ें अविनाशी होती हैं। वह शीतल छाया प्रदान करने वाला सदा हरा-भरा बना रहता है। इसीलिए भगवान ने कहा है—क्षिप्रं भवति धर्मात्मा। यानी सद्गुणों, सत्कर्मों, सद्ज्ञान और सद्संकल्प, का जब बीज हृदय में उग आता है तब व्यक्ति क्षिप्र यानी अविलम्ब धर्मात्मा बन जाया करता है। धर्मात्मा बन जाने पर शाश्वत शान्ति मिल ही जाती है। अस्तु!

—योगी रमतराम

योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज का अवतरण दिवस

—॥ चैत्र शुक्ला रामनवमी ॥—

☐ ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाशजी पालीवाल

गीता में योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण की घोषणा के अनुसार—

"परित्राणाय साधूनां,
विनाशाय-च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय
सम्भवामि युगे-युगे ॥

(परमात्मा हर युग में 'साधु' सन्तों का उद्धार करने के लिए तथा दूषित कर्म करने वाले का विनाश करने और धर्म की संस्थापना के लिए युग-युग में प्रगट होता है।

सृष्टि में स्वाभाविक रूप से यह नियम चला आ रहा है, कि जब-जब वहाँ जैसे-जैसे अधर्म के कारण अत्याचार बढ़ा, तब-तब वहाँ महापुरुषों द्वारा धार्मिक उत्क्रान्ति का प्रवाह अति प्रबलता से बहाया जाता रहा है।

यज्ञ बलि व हिंसा की पराकाष्ठा होने पर भगवान श्री बुद्धदेव के द्वारा अहिंसा का उपदेश; जैनियों एवं बौद्धों द्वारा वेद विरोध अनीश्वर वाद का सीमातीत प्रचार होने पर भगवान् शंकराचार्य द्वारा वेदान्त के एक ईश्वरवाद, और अतिशय शुष्क अहं ब्रह्मवाद का प्रचार होने पर श्री गौराङ्ग महाप्रभु द्वारा आनन्द-प्रेम स्वरूप विशुद्ध प्रेम भक्ति प्रभु नाम से कीर्तन के प्रचार का होना उपरोक्त ईश्वरीय नियम के पालन के ही उदाहरण हैं। त्रेता युग में दुर्दान्त पापी समाज का आधिक्य देखकर अयोध्या में प्रभु चौदह कला युक्त राम रूप में अवतीर्ण हुए। और स्वयं मर्यादाओं को स्थापित करने के लिए अपनी अमोघ धनुष-शक्ति को प्रयोग में लाकर दुष्टों का संहार करके धर्म योग की स्थापना की। इसी प्रकार द्वापर युग में निराकार सर्व शक्तिमान प्रभु ने देखा कि त्रेता से अधिक पापी समुदाय योग धर्म विरोधी रूप में बढ़ रहे हैं तब योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान के नाम रूप से वही निराकार शक्ति साकार रूप धारण करती हुई माता देवकी के गर्भ से प्रकट हुई। इन्हीं श्रीकृष्ण जी के द्वारा धनुष से अधिक शक्तिशाली सुदर्शन चक्र नामक महाशस्त्र का पापियों पर प्रयोग हुआ, जिससे अधर्मियों को नष्ट कर योगधर्म को स्थापित किया गया। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम थोड़ा पाप देखकर जहाँ चौदह कला से प्रगट हुए थे वहाँ श्रीकृष्ण घोर पाप और पापियों की अधिकता देखकर सोलह कलाओं से प्रगट हुए।

इसी उज्ज्वल ईश्वरीय नियम के अनुसार घोर कलिकाल में जबकि पापियों की बाहुल्यता हुई तो उस सर्व शक्तिमान निराकार प्रभु ने अपनी कलाओं द्वारा पुनः अवतीर्ण होना उचित समझा। फलतः पूर्वी पंजाब प्रान्त में अमृतसर नगर कूचा भाई सन्तसिंह में शुद्ध ब्राह्मण वंश में पं. गंडाराम-जी ज्योतिषी जी के गृह में माता भागवती

के गर्भ से वही श्रीराम संवत् 1945 में चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार इष्ट 6 घड़ी 56 पल वृषभ लग्न में महा प्रभु श्री रामलाल के नाम से प्रगट हुए। आपने धनुष सुदर्शनचक्र का प्रयोग न करके इस बार अपनी अपार कृपादृष्टि से योग का असाधारण उपदेश और दिव्य जीवन देकर अपनी अद्भुत योग विभूतियों के प्रदर्शन द्वारा पतितों को सन्मार्गारूढ़ किया यह उन महाप्रभु की अपार अनुकम्पा ही रही।

युग-युग में धर्म संस्थापनार्थ प्रकट होने वाले सर्वेश सर्वाधार विश्वेश्वर परम ब्रह्म निराकार सगुण साकार रूप धर कर जगत में आकर जीवों का उद्धार किया ही करते हैं।

काकभुशुंडिकृत "काकनाड़ी" संहिता की भविष्य वाणी—

मद्रास नगर रायपेट स्थित कौमार नाड़ी ज्योतिषालय में काक भुशुंडिकृत 'काकनाड़ी' नामक संहिता में जो आज से लगभग आठ लाख वर्ष पूर्व त्रेता युगीन महामुनि काकभुशुंडि द्वारा रचित हुआ था आनन्दकन्द श्री महाप्रभु पंडित श्री रामलाल जी का जातक फल इस प्रकार दिया गया है :

(1) महर्षि श्री काक भुशुंडि कहते हैं कि अण्डपिण्ड ब्रह्माण्डों को गर्भ में धारण करने वाली हे देवि! एक महापुरुष का जातक फल मैं कह रहा हूँ। वृषभ-लग्न है, द्वितीय भाव में चन्द्र है, कटिक में शनि राहु है, तुला में गुरु है, वृश्चिक में बृहस्पति है। मीन में रवि है। मकर में केतु है, कुम्भ में बुद्ध व शुक्र है। इस प्रकार की ग्रह स्थिति में जन्म है।

(2) जगत की रक्षा के लिए अवतार लेने वाले महापुरुष है। जन्म भूमि पंजाब है। यह नगर भी किसी समय प्रसिद्ध राजधानी रूप में प्रगट होगा। उसका इतिहास भी महान है। उसका नाम अमृतसर होगा। पूर्व पश्चिम वीथी है, उत्तराभिमुख सिंहद्वार का गृह है। पंचम गर्भ से जन्म है।

(3) जीवों को लोक-परलोक का ऐश्वर्य देने में समर्थ महाप्रभु हैं। आठ सिद्धियों के स्वामी हैं। सभी प्रकार की सिद्धियों के अधिपति हैं। सांसारिक जीवों की प्रारब्ध को अपने ऊपर लेकर तथा भुगतकर उनको भी अपनी पदवी देने में सहायक महापुरुष हैं।

(4) जातक का नाम श्री रामलाल है। पैतृक सम्पत्ति अधिक नहीं। समस्त विश्व को ऐश्वर्य देने में समर्थ प्रभु को पैतृक वैभव से तो क्या प्रयोजन है?

(5) पन्द्रह वर्ष की आयु होने पर विवाह होगा। पत्नी के प्रानकौर व सुभद्रा यह दोनों नाम हैं। माता-पिता के विशेष अनुरोध से ही यह विवाह होगा, फिर भी छिलके के साथ रहकर इमली की भाँति निर्लेप ही रहेंगे। (कमलपत्रमिवाम्भसः) इस प्रकार भी थोड़ा समय व्यतीत करके अन्य देशों की ओर प्रस्थान करेंगे। उस अन्तकाल में भी सन्तानोत्पत्ति की ओर ध्यान न होगा।

(6) पिता जी का नाम श्री पं. गंडाराम है, आपकी बीस वर्ष की आयु के भीतर पिता स्वर्गवासी होंगे। तीस वर्ष की आयु के भीतर माता का स्वर्गारोहण होगा, माताजी का नाम श्रीमती भागवती है।

(7) पिता के देहावसान के पश्चात् गृह त्यागकर तथा दूरस्थ देशों में जाकर वहां

का अनुग्रह प्राप्त कर ज्ञान ज्योति अभेद व्यापक स्वरूप के दर्शन प्राप्त होंगे।

(8) ईश्वर कृपा अधिक रहेगी। बड़े-बड़े अनुभवी सिद्धों को भी होने वाले संदेहों को निवृत्त करने की असाधारण योग्यता को प्राप्त होंगे ऐसी महान् योग्यता बीस वर्ष की आयु के भीतर ही प्राप्त होगी।

(9) ऐसी महान् योग्यता के साथ अनेक स्थानों में भ्रमण करेंगे। इतने में तीस वर्ष आयु होने पर सभी सिद्धियाँ प्रकट होंगी। ज्ञानोपदेश करते हुए अनेक स्थानों में पदार्पण करेंगे।

(10) अन्य जीवों को ज्ञानोपदेश द्वारा कृतार्थ करने वाले गुरुओं के भी गुरु होकर उनकी योग्यतानुसार गुरु-शक्ति प्रदान करते रहेंगे। सृष्टि स्थिति आदि महाशक्ति संपन्न हैं। मुँह माँगा वरदान देने में भी पूर्ण समर्थ हैं।

(11) ये महापुरुष जगत् के आधारभूत महाशक्ति के अवतार हैं। उनका चरित्र अपार है। द्वितीय भाग में विस्तार पूर्वक कहा जायेगा।

(12) सदा सर्वदा निर्विकल्प में स्थिति में रहते हुए इक्यावन वर्ष की आयु में भौतिक शरीर त्यागकर द्वितीय तन धारणकर मेरु-गिर के स्वर्ण शिखर पर रहकर इससे भी अधिक उन्नत स्थिति प्राप्त कर फिर दूसरा शरीर धारण कर कल्पान्त तक यह इसी स्थिति में विराजेंगे। ऐसी उत्तम स्थिति इस महापुरुष में नित्य रूप में रहेगी।

दूसरा भाग—

(1) ईडा पिंगला मध्यस्थ परमानन्द पीठ में रहने वाले कृपा-सागर सर्वव्यापक अथवा सर्वजगत के रूप में प्रकट होने वाले उत्तम भक्तों के हृदयराज में उपस्थित ज्योतिरूप आदि अंत रहित परमेश्वर की प्रार्थना कर यथार्थ नित्य में सर्वदा स्थित एक महापुरुष के जातक फल के द्वितीय भाग का कथन करता हूँ।

(2) इस प्रकार की यह स्थिति में सर्वधारी नामक वर्ष में चैत्र शुक्ला नवमी गुरुवार में पुनर्वसु नक्षत्र युक्त वृषभ लग्न सूर्योदय के अनन्तर 6 घ. 56 पल पर इनका जन्म होगा। इनका शुभ नाम रामलाल है। पिताजी का नाम घण्टाराम है तथा माताजी का नाम भागवती है।

(3) इनके जन्म के पश्चात् अढ़ाई-अढ़ाई वर्ष का फलादेश महामुनि काक भुशुंडिजी ने लिखा है। हम यहाँ मुख्य-मुख्य जातक फल ही लिख रहे हैं।

(4) फिर अढ़ाई वर्ष में अधिकाधिक सम्मान तथा अधिकाधिक पूज्यता बढ़ेगी निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करेंगे। भूमि तथा जल में भी समाधि का अनुभव करेंगे। सत् कीर्ति विशेष बढ़ेगी।

(5) फिर अढ़ाई वर्ष में इस प्रकार अभ्यास करके अष्ट सिद्धियों को प्राप्त होकर ईश्वर साक्षात्कार को प्राप्त होंगे।

(6) पश्चात् के अढ़ाई वर्ष में एक ही समय अनेक स्थानों पर प्रकट होने की शक्ति को प्राप्त होंगे।

(7) फिर के अढ़ाई वर्षों में इस प्रकार की सिद्धियाँ विशेष रूप से बढ़ेंगी। सर्व भूतों में आत्मा में सर्वभूतों को देखेंगे। सर्वव्यापक होकर रहने की सामर्थ्य को प्राप्त होंगे।

जन्म कुण्डली योगेश्वर महाप्रभु पं. श्री रामलालजी महाराज

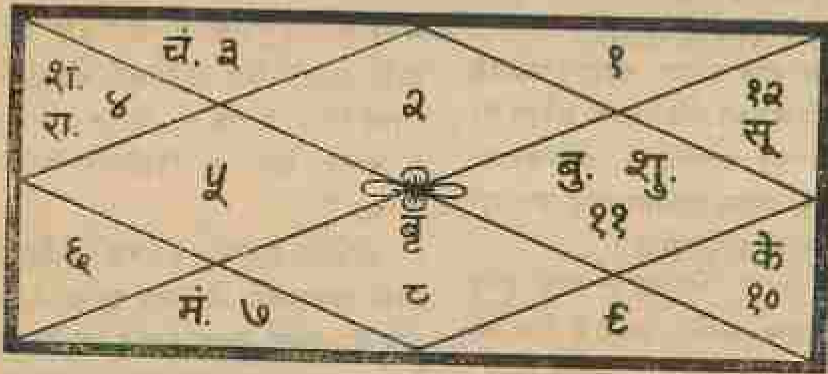

आहार व निद्रा के बिना अजगर की भांति आत्माराम हो प्रकाशित रहेंगे।

(8) बाद के अढ़ाई वर्ष में प्रथम शरीर छोड़कर द्वितीय नूतन योग तन कल्पित करके धारण करेंगे। ऐसी महासिद्धि में निपुणता प्राप्त करेंगे।

(9) फिर के अढ़ाई वर्ष में अयोगी सम्भव शरीर में प्रविष्ट होंगे।

(10) इस प्रकार अनेक स्थानों में योग शरीर से भ्रमण करेंगे।

(11) पीछे के अढ़ाई वर्ष में एक शरीर को बहुत बार छोड़कर स्वेच्छा से बहुत से शरीरों में प्रवेश कर लौटने की महासिद्धि से युक्त हो प्रकाशित रहेंगे।

(12) इस प्रकार लोक पूज्य होकर फिर से अढ़ाई वर्ष में काय व्यूह नामक महासिद्धि से युक्त हो रहेंगे। एक शरीर से अनन्त शरीरों को तथा अनेक शरीरों से एक शरीर को स्वेच्छा से धारण करते रहेंगे। अदृश्यत्व सिद्धि से युक्त होंगे। छुरी से भी न खण्डित होने वाला शरीर होगा।

(13) पश्चात् के अढ़ाई वर्ष तक इस प्रकार की दिव्य शक्तियाँ तथा योग सिद्धियाँ लोक में प्रकट करेंगे।

(14) इक्यावन वर्ष में शरीर-त्याग की लीला संसार को दिखाकर द्वितीय दिव्य शरीर से हिमालय पर्वत तथा अन्य स्थानों में भ्रमण करते रहेंगे। परमेश्वर में व इनमें कोई भेद नहीं है।

(15) इसके पश्चात् नवग्रह इन पर अपना प्रभाव बिल्कुल नहीं दिखा सकेंगे। श्रद्धा भक्ति से अपना ध्यान करने वालों पर सदैव कृपा-दृष्टि रखेंगे इससे अधिक काक भुशुंडि जी कहते हैं कि इस महापुरुष के प्रति मैं क्या कह सकता हूँ। हे माता पार्वती! इस प्रकार काक भुशुंडि जी कहते हैं, जब तक सूर्य चन्द्र हैं तब तक यह महापुरुष इसी प्रकार कल्पान्त तक प्रकाशित रहेंगे।

श्री प्रभुजी की कुण्डलिनी—

रामवतारो भुवि रामलालः
तत्तुल्य पंचांगमिदं प्रमाणम्।
संवेऽथ मासे नवमी निवासे,
शुक्र प्रकाशे भवतां प्रकाशः ॥१॥

अर्थ—इस पृथ्वी पर श्री रामलाल जी महाराज रामावतार ही हैं, क्योंकि आपका जन्म शुभ दिन भी चैत्र शुक्ला नवमी का ही है।

वर्ष ज्ञानमाह्

पञ्चाद्धि खेटेन्दुमितेऽथ वर्षे,
श्री विक्रमादित्य विशेष हर्षे।
सौम्यायने सौम्य महोदयानां,
ज्योतिर्विदां जन्म सुधासरेऽभूत ॥२॥

अर्थ—अंकानाम् वामतो गतिः, इस न्याय के अनुसार आपका अवतार 1945 श्री वीर विक्रम सम्वत् में हुआ। आपका सौम्य अयन में अवतरण होने के हेतु ही स्वभाव के सौम्य होने में प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

लग्न ज्ञानमाह्

वृषेऽथ लग्ने दिन पूर्व भागे,
रविचन्द्र वेदेषुपलेषुचेष्टे।
जन्म त्वदीयं प्रिय। योगिराज,
समादि लालान्त पदाभिधेयं ॥३॥

अर्थ—आपका कैसा सुन्दर वृष लग्न में जन्म है, जिस पर भी दिनके पूर्व भाग अर्थात् प्रातः का समय है। इष्ट 6 घड़ी : 50 पल है।

कश्चिन्न खेरो भवने व्ययमाष्टे,
लग्ने चतुर्थे दशको तथैव।
तथात्मजे योगिमहोदयानां,
अन्येषु भावेषु च खेट वासः ॥४॥

अर्थ—आपके लग्न चतुर्थ, दशम, बारहवें, आठवें, पाँचवें, स्थान में कोई ग्रह नहीं है पर अन्य स्थानों में ग्रह विद्यमान है।

द्वितीय चन्द्रात्परमो मनस्वी,
योगी यशस्वी च तथा तपस्वी।
तस्मात्मनोयोग पदार्थ विद्यां,
योगीजनोऽयं विकल्पो करोति ॥५॥

अर्थ—श्रीमान् जी के दूसरे स्थान में चन्द्रमा है इसका फल ही योगसिद्ध है क्योंकि मन चन्द्रमा है वह कोष में होने से मानसिक भावों की वृद्धि करता है। योग मार्ग में लगाता है, अर्थात् योग विभूतियों का अतिशय प्रकाश करता है।

चैत्र मास

चैत्र मास चिन्ता हरण,
भजो सदा योगेश।
रामलाल करुणासदन,
जय-जय-जय सर्वेश ॥
जय-जय-जय सर्वेश,
विप्रकुलकमल दिवाकर।
गंडाराम सुत निर्मल,
अघाहर दया कृपा रत्नाकर।
चिदानन्द सुन्दर वदन,
विभु स्वामी लोकेश।
चैत्र मास चिन्ता हरण,
भजो सदा योगेश ॥

पूर्ण परात्पर परं ब्रह्म स्वरूप योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की पतित पावनी कीर्ति का वर्णन मेरे जैसे तुच्छ प्राणी के लिए उतना ही असम्भव है जितना कि पंगु के लिए गिरि का लंघन। श्री प्रभुजी का अवतरण पतित आत्माओं के उद्धार के निमित्त तथा अष्टाङ्ग योग को प्रकाशित

करने के लिए हुआ। जो सर्व समर्थ व सर्वतः परिपूर्ण सिद्धि के भी सिद्ध महासिद्ध एवं योगियों के ईश्वर थे। जिनकी पवित्र ख्याति को हमारे परम पूज्य ब्रह्मलीन सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज ने देश-विदेशों में तथा घर-घर में जाकर बताया तथा श्री प्रभुजी की करुणा कृपाओं को प्रत्यक्ष दर्शाया था। पूज्य गुरुदेव श्री आनन्द नन्द महाप्रभु श्री रामलालजी, जो गुरुदेव श्री के पूज्य गुरुदेव जी थे तथा हमारे दादा सद्गुरु देव थे श्री रामनवमी के शुभ अवसर पर श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में श्री महाप्रभुजी के अद्भुत जीवन चरित्रों तथा उनकी यौगिक ऐश्वर्यों के विषय में प्रतिवर्ष बताया करते थे। श्री गुरुदेव जी कहा करते थे कि अमृतसर (पंजाब) में ज्योतिष विद्या के मान्य मान्य विद्वान महामान्य पं. गण्डारामजी ज्योतिषी जी के गृह में श्री प्रभुजी का पवित्र अवतरण हुआ था। प्रभुजी लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बालक्रीड़ा करते हुए घर पर ही रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। जहां-जहां कोई पहुंचा वाला सन्त मिलता और श्री प्रभुजी के स्वरूप को पहचानकर वहीं गद्गद् कण्ठ से उनकी स्तुति करता तथा प्रभु से कृपा की भीख मांगता। श्री प्रभुजी के बाल्य-काल में ही वह घटनायें घटी जो सर्व-साधारण के जीवन में कभी घट नहीं सकती। जैसे चार साल की उम्र में अपने माता-पिता को दिव्यज्योति का अनुभव कराना। छः साल की उम्र की अवस्था में वृद्धा पड़ौसिन जो मरण सन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर कमल स्पर्श कर पूर्ण भक्ति का वरदान देना। लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रोमतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्मा जी को स्वयं ही जाकर दर्शन देना। चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गांव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्म जात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक रहा। किन्तु फिर भी लोक लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन-यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मानवीय बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहां बागमती गंगा का उद्गम स्थल है, वहां से कुछ दूर चल कर किसी झार-खण्ड में रहकर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदाशिव स्वरूप एक महापुरुष आये और श्री प्रभुजी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक सिद्ध स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया; और श्री प्रभुजी से कहा कि तुम यहीं रहो; लेकिन यहां की इस नर-भक्षक जड़ी को दिखाकर इससे सावधान रहने को कहा। यह कहकर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस सिद्ध स्थान से 6-7 मील की दूरी पर कुछेक सिद्ध महापुरुष रहते थे। श्री प्रभुजी विचरते हुए उन सिद्धों से मिले; उन्होंने श्री प्रभुजी को बताया कि यह महा-पुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहां पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महा सिद्ध हैं और छः महीने में एक

बार समाधि से उठते हैं। जिनका प्रातः बाल रूप रहता है तथा मध्यान में युवा तथा सायंकाल को वृद्ध हो जाते हैं। जब तक श्री सदाशिव समाधि से उठे तब तक श्री प्रभुजी की स्वयं की समाधि कई रोज तक की लग जाती थी। श्री प्रभुजी का सारा शरीर बर्फ से ढक जाता था। इस प्रकार श्री प्रभुजी हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर सिद्धाश्रमों में लगभग 12 वर्ष तक रहे और फिर संसार के पवित्र एवं वेदना पूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागरजी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आदि-व्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री प्रभुजी भू-मण्डल पर लौट आये। और संसार में आकर के प्राणीमात्र के भले व कल्याण एवं आत्म उत्थान के लिए पवित्र सिद्धयोग मार्ग के प्रचार का आरम्भ किया। इस सिद्धयोग का शुभारम्भ आदि अनादि महासिद्ध गुरु योगियों के ईश्वर भगवान सदाशिव से हुआ है। श्री प्रभुजी के गुरुदेव यही स्वयं भगवान सदाशिव ही हैं। संसार में आकर श्री प्रभुजी ने मुख्य तीन कार्य आरम्भ किए।

(1) योग से सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति (2) राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए अमर तत्व साधन। (3) तथा सबसे बड़ा काम जो श्री प्रभुजी ने किया वह था शक्तिपात दीक्षा—जो प्रत्येक गुरु के लिए करना सम्भव नहीं है। शक्ति संचार केवल सिद्ध योगिराज ही कर सकते हैं।

श्री प्रभुजी ने हिमालय से आकर सवाई म.प्र में श्री सिद्ध गुफा का निर्माण कर वहाँ अलौकिक चमत्कार किए। इसके बाद श्री प्रभुजी ने ऋषीकेश तथा अमृतसर छेहरटा आश्रम में पगड़ीधारी स्वरूप—पंडित भेष में रहकर जीवों का कल्याण किया और आज भी कर रहे हैं। लखनऊ निवासी श्री राममनोहर जी अवस्थी श्री प्रभुजी के परम कृपापात्र शिष्यों में थे। श्री अवस्थी जी के द्वारा श्री प्रभुजी ने लखनऊ आकर कुछ समय तो अवस्थीजी के यहाँ निवास किया था। सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी की कृपा तथा श्री प्रभुजी की प्रेरणा से उन्होंने अपना एक सिद्धयोग शिक्षण संस्थान के नाम से सिद्धयोग मन्दिर राजा की पुरम एफ-2400 में सन् 1980 में स्थापित कराया। तथा श्री प्रभुजी ने व गुरुदेव जी ने अपनी कृपा शक्ति को इस आश्रममें संस्थापित किया जिसके फलस्वरूप अनेक स्त्री-पुरुषों तथा बालकों ने ध्यान में प्रसन्न श्री प्रभुजी को आश्रम में विराजमान देखा। श्री प्रभुजी अपने श्रद्धालु बच्चों पर शक्ति संचार व कृपा दृष्टि हर समय करते रहते हैं। आश्रम में आए हुए जगत् गुरु शंकराचार्य श्री विष्णु देवानन्द जी महाराज ने यहीं स्वयं हजारों नर-नारियों की भीड़ में श्री प्रभुजी की कृपा का अनुभव करते हुए कहा था "लखनऊ वासियो तुम बड़े ही सौभाग्यशाली हो तुम जिस महापुरुष के आश्रम में बैठे हुए हो, उस महाप्रभु के केवल मन्दिर में विराजमान स्वरूप में ही इतनी शक्ति है कि तुम कुछ भी मत करो सिर्फ इन महा प्रभुजी के स्वरूप के सामने आँख बन्द करके मात्र बैठ जाओगे तो इतने मात्र से तुम्हारा भला व कल्याण हो जायेगा।

—क्रमशः

वर्ष १९९२-९३ सिद्धयोग आय-व्यय

श्री सिद्ध गुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र सवाई आश्रम के 'सिद्धयोग' के प्रकाशन हेतु 25वें वर्ष की छपाई, कागज, बाईंडिंग के लिए जो धनराशि गुरु भाई-बहनों के सहयोग से प्राप्त हुई है उसकी तालिका निम्न प्रकार है :—

			रु० पै०
सिद्धयोग ग्राहक शुल्क से आय	=		19250-00
		रु० पै०	
श्रीमती सुशीला कुकरेजा	=	501-00	
,, गोपी बहन	=	101-00	
श्री मोहनलाल शर्मा	=	101-00	
श्री गंगाप्रसाद मिश्र	=	501-00	
श्री ब्रजनंदन तिवारी	=	51-00	
श्री के. पी. खट्टर	=	55-00	
श्री बी. एल. शर्मा	=	101-00	
श्री श्याम लिखधारी	=	51-00	
श्रीमती पुष्पा तिवारी	=	70-00	
श्रीमती कुकरेजा सत्संग मण्डल झाँसी	=	317-00	
श्रीमती लक्ष्मी (फिरोजाबाद)	=	100-00	=11321-75
श्री गोविन्द द्वारा अन्य फुटकर	=	123-00	
श्रीमती एस. के. बक्सी झाँसी	=	1000-00	
श्री कैलाश नारायण कुलश्रेष्ठ (ग्वालियर)	=	100-00	
..गपुर जिला के कतिपय भाई-बहन	=	5126-00	
जो अपना नाम प्रकट नहीं कराना	=	2023-75	
चाहते अनुदान से प्राप्त	=	1000-00	
		योग=11321-75	30571-25
सिद्धयोग डिस्पेचिंग, आदि का खर्च	=	2553-00	
प्रेस की छपाई, कागज, आदि कुल योग		34444-00	
प्रेस को दी गई रकम का योग		25074-00	
प्रेस को देना शेष है	=	9370-00	

नोट—सम्पादकीय विभाग का खर्च इसके अतिरिक्त है।

छः आजीवन सदस्यों की जमाराशि पर प्राप्त धन जमा बैंक में। रु. 2976/-

—भुवनेन्द्र झा।

स्वामी रामकृष्ण का 'समान धर्म-दर्शन'

अन्य धर्मों की भाव-साधना

श्री रामकृष्ण मिशन के सौजन्य से

हम पहले कह आये हैं कि दीर्घकाल तक तुरीय भावभूमि में अवस्थान करने के फल-स्वरूप श्रीरामकृष्ण को जातिस्मरत्व प्राप्त हुआ था। इससे वे समझ गये थे कि वे स्वयं शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव ईश्वर हैं, जिन्होंने पूर्व युगों में श्रीराम व श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लेकर जीवोद्धार करते हुए जगत् का असीम कल्याण किया है और वे ही वर्तमान युग में श्रीरामकृष्ण के रूप में देहधारण कर अवतीर्ण हुए हैं। पातंजल-योगसूत्र और छांदोग्य-उपनिषद् आदि ग्रंथों में ब्रह्मस्वरूप में अवस्थिति के पूर्व जातिस्मरत्व का वर्णन है। छांदोग्य-उपनिषद् के मतानुसार इस प्रकार के ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष पितृलोक, मातृलोक, स्वर्गलोक, सखिलोक, अन्नपानलोक अथवा किसी भी अन्य लोक की इच्छा करते हुए संकल्प मात्र से उन लोकों में आवागमन कर सकते हैं। पंचदशी में भी निर्देश है कि ब्रह्मज्ञपुरुष योगैश्वर्य-सम्पन्न, सिद्धसंकल्प और सर्वेशत्व के अधिकारी होते हैं। इस समय श्रीरामकृष्ण पूर्णतः ब्रह्मस्वरूप हो गये थे।

जगन्माता ने उनसे कहा था—"तू और मैं पृथक् नहीं एक हैं। जीवों के कल्याण के तू भक्ति लेकर भावमुख अवस्था में रह। अनेक भक्त तेरे पास आएँगे, तू उन सब का उपकार करना। बहुत से शुद्ध सत्व और कामनाशून्य भक्त तेरे पास आकर भक्तिलाभ करेंगे—ज्ञानलाभ करेंगे।

श्रीरामकृष्ण ने कहा था—"मुझे सभी धर्मों का एक-एक बार ग्रहण करना पड़ा था। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, फिर वैष्णव, वेदान्त, इन सब पंथों से होकर आना पड़ा है। देखा कि ईश्वर एक ही है—भिन्न-भिन्न मार्गों से सब उन्हीं के पास चले आ रहे हैं।" हमने पहले उल्लेख किया है कि छह महीने तक निरंतर समाधि में ब्रह्मानंद का उपभोग करने के उपरान्त उन्हें आद्याशक्ति ने भावमुख में रहने का आदेश दिया था। अब श्रीराम कृष्ण के मन में अन्य धर्मों के बारे में जानने की इच्छा हुई। उन्होंने जगन्माता से कहा—"माँ! अन्य धर्मों के अनुयायी तुझे किस प्रकार पुकारते हैं, मुझे बता दे।"

इसके कुछ ही दिनों बाद सूफी संप्रदाय के एक मुसलमान फकीर दक्षिणेश्वर आये, जिनका नाम गोविंदराय था। साधनरत गोविंद राय की सरलता और प्रेम देखकर श्रीरामकृष्ण उनकी ओर आकृष्ट हुए और इस्लाम-धर्म की दीक्षा तथा उपदेश लेकर साधना में प्रवृत्त हुए। उन दिनों वे सारे दिन 'अल्लाह' मंत्र का जप करते थे और दिन में

पाँच बार नमाज पढ़ा करते थे। इस्लाम-धर्म के साधनकाल में उनके मन से हिन्दू-भाव पूर्णतया लुप्त हो गया था, जिसके फलस्वरूप हिन्दू देवी-देवताओं को प्रणाम करना तो दूर मंदिरों में उनके दर्शन करने तक नहीं जाते थे। इस प्रकार लगातार तीन दिन तक पूर्ण मनोयोग के साथ साधना करने के बाद उन्हें लम्बी दाढ़ीवाले एक गंभीर ज्योतिर्मय पुरुष का दर्शन मिला था। वे दिव्य पुरुष ही इस्लाम-धर्म के संस्थापक 'हजरत मुहम्मद' थे।

तेरह सौ वर्ष पूर्व पैगंबर मुहम्मद ने सगुण एकेश्वरवाद का प्रचार किया था तथा अपने अनुयायियों को 'एक-ईश्वर' और 'एक-धर्म' का उपदेश दिया था। वही एक ईश्वर है जो वेदान्त-दर्शन में निराकार सगुण ब्रह्म के रूप में जाने जाते हैं। इस्लाम-धर्म में श्रीरामकृष्ण की सिद्धि द्वारा यही सिद्ध होता है कि हिन्दू-धर्म और इस्लाम में भेद-भाव बेकार है। वेदान्त के आलोक में यह भेद-भाव दूर हो सकता है।

इस घटना से लगभग डेढ़ वर्ष बाद एक दिन श्रीरामकृष्ण ने व्याकुलतापूर्वक माँ भवतारिणी से कहा—"माँ! तेरे ईसाई भक्त तुझे किस प्रकार पुकारते हैं, मैं देखना चाहता हूँ, मुझे ले चल।" कुछ दिन बाद ही उन्हें कलकत्ते जाकर एक गिर्जाघर के द्वार पर खड़े होकर उनकी उपासना देखने का सुयोग मिला। श्रीरामकृष्ण ने लौटकर भक्तों से कहा था—"मैं खजांची के भय से भीतर नहीं गया, सोचा कि यदि वह फिर कालीमन्दिर में न घुसने दे!" दक्षिणेश्वर में ही कालीमन्दिर के दक्षिण की ओर यदु मल्लिक का मनोरम उद्यानभवन है। यदुबाबू और उनकी धर्मपरायण वृद्धा माता श्रीरामकृष्ण की देवता के समान भक्ति किया करते थे। उनके बैठकखाने की दीवार पर अन्य चित्रों के साथ ही 'मरियम की गोद में शिशु ईसा' का भी एक सुन्दर चित्र था। एक दिन श्रीरामकृष्ण उनकी बैठक में बैठे तन्मय हो उसी मनोरम चित्र की ओर एकटक देख रहे थे। ईसा मसीह के अद्भुत जीवन का चिंतन करते हुए क्रमशः वह भावाविष्ट हो गये। उन्होंने देखा कि चित्र ज्योतिर्मय हो उठा है और माता तथा शिशु के अंगों से दिव्य ज्योति निकलकर उनके भीतर प्रवेश कर रही है। वे गहन-ध्यान में लीन हो गये। ध्यान में उन्होंने ईसा की प्रशांत मूर्ति और प्रार्थनागृह देखा जहाँ पर ईसाई पादरीगण धूप-दीप आदि जलाकर भक्तिपूर्वक पूजा व प्रार्थना कर रहे थे। इसी भाव में मग्न होकर वे कालीमंदिर लौट आये।

यह भावतन्मयता उनके भीतर तीन दिन तक रही और इस अवधि में कालीमंदिर में जाने की बात वे बिल्कुल ही भूल गये। तीसरे दिन वे भावविभोर पंचवटी के नीचे टहल रहे थे कि उन्होंने देखा—एक सुन्दर गौरवर्ण देवमानव चारों ओर प्रकाश बिखेरते हुए उन्हीं की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। उनके मुखमण्डल पर देवभाव और विशाल नयनों में अपार करुणा झलक रही थी। श्रीरामकृष्ण विस्मित हो विचार करने लगे—ये सौम्य पुरुष कौन हैं? उनके हृदय

के भीतर से आवाज आयी—'ईसा मसीह ! जिन्होंने जीवों के उद्धार के लिए अपने हृदय का रुधिर बहाया था।' धीर-स्थिर पगों से बढ़ते हुए पास पहुँचकर उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अपने आलिंगन-पाश में बाँध लिया और उन्हीं की देह में विलीन हो गये।

बहुत दिनों बाद ईसा मसीह की चर्चा करते हुए श्रीरामकृष्ण ने भक्तों से पूछा था—"क्यों जी ! तुम लोगों ने तो बाइबिल पढ़ी है। बताओ तो सही, उसमें ईसा के शारीरिक गठन के बारे में क्या लिखा है ? मैंने तो देखा उनकी नाक थोड़ी चपटी-सी थी।"

बौद्धधर्म, जैनधर्म तथा सिक्खधर्म की साधना करने का श्रीरामकृष्णदेव की जीवनगाथाओं में कोई उल्लेख नहीं मिलता। किंतु भगवान् बुद्ध के बारे में अपने विचार प्रगट करते हुए एक बार उन्होंने कहा था—"बुद्धदेव के संबंध में मैंने बहुत कुछ सुना है। वे दशावतारों में से एक थे। ब्रह्म अटल, अचल, निष्क्रिय और बोधस्वरूप है। बुद्धि जब इसी बोधस्वरूप में लीन हो जाती है, तब ब्रह्मज्ञान होता है और तब मनुष्य बुद्ध हो जाता है।" जैनधर्म के प्रवर्तक तीर्थंकरों सिक्खगुरु नानकदेव के प्रति भी उनकी अपार श्रद्धा थी।

समाधि में विघ्न हैं सिद्धियाँ

महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्रों के रूप में भारतीय विचार को जो स्वरूप प्रदान किया है, उसे अपने आप में अद्वितीय माना जा सकता है। मानव-जीवन का सारा खेल चित्तवृत्तियों का है। उनका निरोध ही जीवन की सच्ची साधना है। चित्त की वृत्तियाँ ही मनुष्य को ऊपर उठाती हैं और गलत दिशा में बहने पर उसे पतन के गर्त में भी गिराती हैं। योगसूत्रों में विस्तार से बताया गया है कि चित्त की वृत्तियाँ क्या हैं और किस प्रकार उनका निरोध किया जा सकता है।

गीता में साधना के लिए जिन दो अनिवार्य साधनों का प्रतिपादन किया गया है, वे हैं—अभ्यास और वैराग्य। महर्षि पतञ्जलि भी अभ्यास और वैराग्य पर सबसे ज्यादा जोर देते हैं और उनकी दृढ़ता के लिए साधनपाद में उपयुक्त साधनों का भी विस्तार से विवेचन करते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार से चलते-चलते वे धारणा, ध्यान और समाधि का विधिवत् विवेचन करते हैं। यह समाधि विभिन्न सिद्धियों की उपलब्धि में भी सहायक सिद्ध हो सकती है, ऐसा बताते हुए भी महर्षि पतञ्जलि ने सिद्धियों का तिरस्कार किया है। उनका कहना है कि सिद्धियाँ समाधि में विघ्न डालती हैं और सिद्धियों के मोह में पड़ने पर साधना का विकास रुक जाता है।

—कृष्णराज मेहता

भारतीय धर्म और जीवन की विशेषताएँ

□ श्री वेदव्रत शर्मा

श्रूयतां धर्म-सर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

"धर्म का सार यह है कि जो व्यवहार आपको अपने लिये नहीं अच्छा लगता उसका व्यवहार आप दूसरों के लिए भी न करें ।" यहाँ व्यवहार का अर्थ बर्ताव ही है ।

× × ×

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

—गीता 5/18

"ज्ञानी विद्या-विनय सम्पन्न ब्राह्मण में, चाण्डाल, गौ, हाथी, चींटी और कुत्ते में समान आत्मा और प्रभु को देखते हैं ।" इनके साथ यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए । यही सच्ची समता है । यही सच्चा समाजवाद और साम्यवाद है । हमारी समता बड़ी विस्तृत है जो कि मनुष्य मात्र के भीतर ही सीमित नहीं है । यहाँ तो प्राणि-मात्र यथायोग्य समता का अधिकारी है । यहाँ का साम्यवाद आश्रम और वर्णव्यवस्था पर ही आधारित है । भारत का अपना त्यागवाद है ।

× × ×

निर्वैरः सर्व-भूतेषु यः स मामेति पाण्डवः ।

"जो सब प्राणियों से अहिंसा का बर्ताव करता है वही मेरा प्रिय है, ऐसा कृष्ण भगवान् का आदेश है ।"

× × ×

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

"जो मनुष्य अपनी ही तरह से दूसरों के भी सुख दुःख को समझता है और अपनी सुविधाओं और असुविधाओं की भाँति दूसरों की भी सुविधा या असुविधा समझता है वही त्यागी और योगी है ।"

☐ श्री विष्णु प्रसाद व्यास

-: गुणवान बनो :-

अपने सेवकों और भक्तों के हितार्थ परमपिता परमात्मा समय-समय पर अवतार लेते रहते हैं। ये अवतार दो तरह के होते हैं :—

(1) निमित्त अवतार, जो किसी विशेष उद्देश्य के लिए होता है, जैसे भगवान श्री राम का अवतार राक्षसों का नाश और धर्म की रक्षा करने के लिए हुआ।

(2) नित्य अवतार, जो सत्पुरुषों के रूप में आम जीवों को सन्मार्ग पर लगाने, उन्हें भक्ति पथ दर्शाने और उन्हें काल माया के पंजे से छुड़ाने के लिए समय-समय पर होता रहता है।

चूँकि अवतारी पुरुष परमेश्वर का ही सगुण साकार रूप होते हैं, इसलिए वे भी सर्वशक्तिमान और सर्वसमर्थ होते हैं उनकी शक्ति असीम होती है जीव के लिए उनकी शक्ति का अनुमान लगाना असम्भव है, उसकी कल्पना से परे है। सत्पुरुषों की इच्छा और मौज से ही सृष्टि के सब काम हो रहे हैं। उनकी कृपा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उनसे भ्रू-विलासमात्र से ही सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश हो जाता है। सूर्य और चाँद उनकी शक्ति से ही प्रकाशित हैं और तारागण उनकी शक्ति से ही एक-सूत्र में बँधे हुए आकाश में स्थिर हैं। सत्पुरुषों के चरण-कमल के नखों के धोवन का जलपान करने से अश्रुओं का नाश हो जाता है। उनका पवित्र नाम लेते ही यमराज थर-थर काँपने लगते हैं और उनके कृपा कटाक्ष मात्र से भवसागर का पार करना गाय के खुर के गड्ढे को पार करने के समान सुगम हो जाता है। उनकी दिव्यतम अलौकिक लीलाओं का भेद मानव बुद्धि नहीं समझ सकती और समझे भी कैसे? जीव की बुद्धि सीमित है। उसकी इतनी दम नहीं कि सत्पुरुषों की अलौकिक लीलाओं को समझ सके। महापुरुषों की लीलाओं को केवल वही समझ सकता है जिस पर वे स्वयं कृपा करके अपनी लीलाओं का भेद प्रकट करें।

भगवान श्री कृष्ण की शक्ति से अर्जुन कब परिचित था? उसे प्रभु की शक्ति का तभी ज्ञान हुआ जब भगवान ने स्वयं ही अपना विराट रूप उसे दिखलाया। उस समय भगवान श्री कृष्ण ने अपनी शक्तियों का अर्जुन के प्रति विस्तार से वर्णन किया और यहाँ तक कह दिया कि—

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च
भविष्य ताम् ।
—गीता 10/34

अर्थात् मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और भविष्य में होने वालों की उत्पत्ति का कारण हूँ।

सम्पूर्ण अलौकिक एवं दिव्यतम शक्तियों के विभु (स्वामी) होने पर भी प्रभु मानव वपु से कभी-कभी ऐसी लीलायें कराते हैं, जिन्हें देखकर साधक के मन में उनके दिव्य पुरुष होने के विषय में संशय उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि सेवक के मन में अपने इष्टदेव के प्रति ऐसे विचारों का कभी भी आविर्भाव नहीं होना चाहिए, उसे अपने मालिक पर और उनकी दिव्य शक्तियों पर अटल विश्वास होना चाहिए, परन्तु फिर भी कभी कभी ऐसा होता है और सेवक अपने स्वामी के कार्य-कलापों को देखकर तथा उन्हें साधारण मानव समझकर संशययुक्त हो जाता है। इसे जीव की अज्ञानता और भूल कहा जाये अथवा प्रभु की लीला का ही एक रूप समझा जाये ! क्योंकि यह देखा गया है कि जब-जब सेवक के हृदय में अपने इष्टदेव के प्रति संशय उत्पन्न हुआ है, तो उसके पीछे भी गहन भेद छिपा हुआ होता है। वह भेद यही होता है कि प्रभु संशय निवारण के बहाने ही अपने सेवकों को सुन्दर सत्संग-उपदेश देते हैं, जिससे न केवल उस सेवक के हृदय से ही संशय-भ्रम दूर हो जाते हैं, प्रत्युत उस उपदेश को श्रद्धापूर्वक हर सुनकर अन्यान्य जीवों के हृदय से भी अज्ञान अन्धकार तथा भ्रम दूर होते हैं और उनके हृदय में अपने इष्टदेव के प्रति आस्था और भी सुदृढ़ होती है। इसी विषय में यहाँ हम श्री रामायण का एक प्रसंग दे रहे हैं।

राम-रावण का युद्ध हो रहा है। रावण नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रथ पर आरूढ़ है जबकि भगवान् श्रीराम के पास न तो रथ है, न कवच है और न ही अनेक प्रकार के आयुध। उनके पास केवल एक धनुष है और तुणीर में कुछ बाण। यही नहीं, प्रत्युत रावण बलशाली है और उसका अंग-अंग सुदृढ़ है जबकि भगवान श्रीराम का पावन वपु सुकुमार है। यह देखकर विभीषण के चित्त में संशय उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। जैसे ही उसके मन में संशय उठा, वह अधीर हो उठा और व्याकुल होकर उसने प्रभु के चरणों में इस विषय में विनय की।

रावनु रथी विरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषण भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा।
बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहि तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
—लंका काण्ड

रावण को रथ पर और भगवान श्रीराम को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गया। अधिक प्रीति के कारण उसके मन में सन्देह हो गया कि श्रीराम जी बिना रथ के रावण को कैसे जीत सकेंगे? अतएव भगवान के चरणों में प्रणाम करके उसने स्नेहपूर्वक कहा—हे नाथ आपके पास न रथ है, न ही तन पर कवच है और नही पादत्राण (पादुका)

है। अतएव बलवान वीर रावण को आप किस प्रकार जीतेंगे ?

विभीषण का यह संशययुक्त कथन सुनकर भगवान श्रीराम ने उसे अत्यन्त सुन्दर उपदेश दिया कि हे सखे ! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और शक्ति उसकी दृढ़ ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का दमन) और परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरियों से बँधे हैं। ईश्वर का भजन ही उस रथ को चलाने वाला चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और सन्तोष तलवार है। दान (इष्टदेव के चरणों में सर्वस्व अर्पण करना) फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है और उत्तम ज्ञान का कठिन धनुष है। निर्मल (पाप रहित) और अचल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शम (मन का वश होना), अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि यम तथा शौच (तन मन की पवित्रता) आदि नियम—ये अनेक प्रकार के बाण हैं। ज्ञानियों और सन्त सद्गुरु का पूजन अभेद्य कवच है।

भगवान श्रीराम कहते हैं कि हे सखे ! इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास हो, उसके लिए जीतने को कहीं कोई शत्रु नहीं अर्थात् वह सब को जीत चुका। हे धीर बुद्धि वाले सखा ! सुनो, जिसके पास सुदृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मरण) रूपी महान शत्रु को ही जीत सकता है, रावण की तो बात ही क्या है ?

भगवान श्रीराम का यह उपदेश सुनकर विभीषण जी के सब भ्रम-संशय दूर हो गये तथा वे अति हर्षित हुए और उन्होंने भगवान के चरणों में विनय की—

सुनि प्रभु बचन बिभीषन,
हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु,
राम कृपा सुख पुंज॥

प्रभु के वचन सुनकर विभीषण जी ने हर्षित होकर उनके चरण-कमल पकड़ लिये और विनय की—हे कृपा और सुख के समूह श्रीराम जी ! आपने इसी बहाने मुझे महान् उपदेश दिया।

अभिप्राय यह कि जिसके अन्दर उपरोक्त गुण विद्यमान होते हैं। वह मनुष्य सुगमता पूर्वक जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो बच्चा स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो, साधे और साफ़ कपड़े पहने हो, परिश्रमी और बुद्धिमान हो, शिष्ट, सदाचारी, शुभ कर्मी तथा मधुरभाषी हो, तो ऐसा बच्चा सबको प्रिय लगता है और सबकी आँखों का तारा कहलाता है, उसी प्रकार जो मनुष्य भगवान श्रीराम के सुन्दर उपदेश में वर्णित गुणों को धारण करके सच्चा गुणवान बन जाता है।

वह परमपिता परमात्मा को तो प्यारा लगता ही है, औरों का भी प्रिय-पात्र बन जाता है और ऐसा मनुष्य ही मालिक के धाम में उज्जवल मुख होता है।

प्रश्न उठता है कि क्या जीव के लिए अपने अन्दर इन सब गुणों का समावेश करना सम्भव है जबकि काल और माया उसे पग-पग पर धोखा देने, उसे कुमार्ग पर लगाने और उसे चौरासी लाख योनि के गहन-गर्त में धकेलने के लिए हर समय तत्पर हैं ?

यदि विचार पूर्वक देखा जाये तो जीव में इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह काल और माया जैसे बलशाली शत्रुओं से लोहा ले सके और वह भी इस स्थिति में जबकि उसका अपना मन भी काल और माया के साथ मिलकर

जीव के साथ शत्रुता कर रहा हो। इसलिए जीव यदि चाहता है कि वह इन सब गुणों से सम्पन्न हो, तो उसे चाहिए कि सन्त सद्गुरु का सहारा ले और अपने आपको उनकी आज्ञा में लय कर दे, अपने अस्तित्व को उनके पवित्र अस्तित्व में गुम करदे। सद्गुरु की आज्ञा और उनके वचन में संसार के समस्त गुण समाये हुए हैं। जैसे बीज में ही तना, टहनियां, पत्ते, फूल, और फल समाये रहते हैं, वैसे ही गुरु के वचन में भी सब गुण ओत-प्रोत रहते हैं। जो शिष्य गुरु के वचन को दृढ़ता से हृदय में धारण कर लेता है, उसमें संसार के सारे गुण स्वयमेव आ जाते हैं, जैसे कथन है—

गुन सब गुरु के वचनं माहीं।
सहजो सिव जो बिसरें नाहीं॥
(सन्त सहजो बाई)

इसलिये शिष्य को चाहिये कि दुष्टता और सब संशयों का त्याग करके सज्जनता को धारण करे और गुरु आज्ञा को श्रद्धापूर्वक शिरोधार्य करे। ऐसा करने से वह सहज ही संसार अर्थात् जन्म-मरण रूपी महान शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेगा और ईश्वर के ध्यान की प्राप्ति करके सच्चे सुख आनन्द को पा लेगा।

-: ब्रह्म पुर :-

लेo—श्री कर्मनारायण कपूर

- परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। वह सर्वव्यापक है, अतः वह एकदेशीय नहीं हो सकता।
- आत्मा भी सूक्ष्म है। उसका सूक्ष्म शरीर है जिसकी श्रवण, स्पर्श, दर्शन स्वादन तथा घ्राण शक्तियां शरीर के अन्दर ही स्थित हैं।
- आत्मा मन के अन्दर प्रविष्ट रहता है (अथर्व 10|8|28) और मन हृदय के अन्दर रहता है (यजु: 34|6)।
- ब्रह्म जीवात्मा की तेजस्विनी (ब्रह्म) पुरी में प्रविष्ट है। (अथर्व 10|2|33)
  प्राणिमात्र के हृदय में आत्मा है, उस आत्मा के भीतर पुरुष-ब्रह्म छिपा बैठा है, वह आत्मा का भी अन्तरात्मा है (कठ 6|17)।
  वह पुरुष, आत्मा के भीतर सदा मनुष्यों के हृदय में सन्निविष्ट है। (श्वेताश्वर उप. 3|13)।
- ब्रह्म के दर्शन "आत्म लोक" में "पितृ-लोक" में "गन्धर्व-लोक" और "ब्रह्म लोक" में होते हैं। (कठ 6|5)
  पितृ-लोक, गन्धर्व लोक तथा ब्रह्मलोक इन शब्दों के गूढ़ अर्थ प्राप्त करने योग्य हैं।
  ज्ञानी मन और बुद्धि को प्रभु में जोड़ते हैं (ऋ. 5|8|1|1)। मन और बुद्धि शरीर के अन्दर रहते हैं, उनका प्रभु के साथ सम्पर्क केवल शरीर में ही हो सकता है।

[साभार वेदवाणी से]

□ श्री वेदव्रत शर्मा

राष्ट्र को वीर-भावना की आवश्यकता

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा ही सात्विक बलिदान की भावनाओं से ओत-प्रोत होकर वीरत्व की पुनीत—प्रतिष्ठा प्राप्त कराती है। वेतन-भोगी अस्वस्थ आत्मा वाला भूधर-काय भी वीर नहीं हो सकता। आदर्श सैनिक राष्ट्रीयता और बलिदान की भावनाओं से प्रेरित होकर अपनी मातृ-भूमि का अपने को सच्चा सपूत समझता है। इसके सम्मान और सुरक्षा के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिए सर्वदा कटिबद्ध रहता है। वीर ही सच्चा क्रान्त-दर्शी होता है। इसके बलिदान एवं उत्सर्ग की आधार-शिला ही स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता की भित्ति खड़ी की जाती है।

इस प्रकार निर्मित स्वतन्त्रता का भवन अजेय और चिरस्थायी होकर 'अयोध्या' ही होता है। उक्त भावनाओं से विहीन वेतनार्थी सैनिक निःसत्व उत्साह हीन भेड़ और बकरी की भाँति गतानुगतिक होता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र का परम-कर्तव्य होता है कि वह राष्ट्र के सैनिकों की आत्माओं को राष्ट्रीयता की भावनाओं से चैतन्य और बलवती बनावे।

राष्ट्रीयता की भावनाओं से प्रेरित होकर एक आदर्श सैनिक अपने को वीरत्व की आकांक्षाओं से भरपूर कर आत्माभिमानी हो जाता है। वीरत्वाभिमानी सैनिक ही वीर-भूमि के वीर सैनिक होते हैं। ये ही ससागरा भूमि के रक्षक और नियामक होते हैं। इन्हीं भावनाओं को भगवती श्रुति भी परिपुष्ट करती है—

वीर—भोग्या वसुन्धरा

'रत्न-गर्भा ससागरा भूमि वीरों के द्वारा ही सुरक्षित होती हुई उन्हें पुत्रवत् पालती है।' अन्यथा इस पर दूसरों का आधिपत्य होता है। सैनिक अपनी भूमिका मातृवत् समादर करता है। अपने शरीर के रुधिर-कण में देश के पञ्चतत्वों को सन्निविष्ट पाता है। जैसा कि भक्त-प्रवर महात्मा तुलसीदास कहते हैं।

छिति जल पावक गगन समीरा।
पञ्च-तत्व यह रचित शरीरा॥

अर्थात् हमारे शरीर में जो पृथ्वी का अंश, जल का अंश, वायु का अंश, अग्नि का अंश और आकाश का अंश है, वह हमारी मातृ-भूमि का ही समग्र रूप रूप है। जन्म-दातृ माता उन अंगों को परिशुद्ध करने का माध्यम मात्र है। इन्हीं अंगों को प्यारी जन्म-दात्री माँ हमें अपने गर्भाशय में तथा दुग्ध में प्रदान करती है, इन्हीं भावनाओं से परिशुद्ध अन्तःकरण वाला सैनिक युद्ध की वेदी पर श्रद्धा-भक्ति से कहता है कि—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये॥

"यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो।" इसी समादर को प्रदान

करता हुआ आदर्श सैनिक नत-मस्तक होकर कहा करता है—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

(रामायण)

प्रत्येक देशवासी को अपनी मातृ-भूमि से वही सम्बन्ध और ममता रखनी चाहिए, जो सम्बन्ध और ममता वह अपनी जन्मदातृ-माता से रखता है। मातृ-भूमि और माता पुत्रों को स्वर्ग से भी बढ़कर मान और आनन्द प्रदान करने वाली होती है। अतः प्रत्येक नागरिक अपनी मातृ-भूका पुत्र होता है और मातृ-भूमि उसकी मातातुल्य होती है। वीर के हृदय में अपनी मातृ-भूमि के प्रति वही श्रद्धा-भक्ति होती है, जो कि जन्म-दातृ माँ के प्रति होती है। वेद में भी इसी भावना से उपदेश करते हैं कि—

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।

अथर्ववेद 12/1/12

भारत-माता वीर प्रसवा है। अतः वीरों के हृदयों मातृ-भूमि का जाज्वल्यमान रेखा-चित्र अङ्कित रहता है, जिस पर वीर-सैनिक आत्माभिमान करते हुए फूला नहीं समाता। सती सीता, माता दुर्गा और झांसी की रानी को कौन भूल सकता है? जहाँ हमारी मातृ-भूमि सिंह वाहिनी रिपु-दलवा-रिणी है, वहाँ अपने को भाँति-भाँति के खाद्य पदार्थों से हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ट भी बनाने वाली। गङ्गा, यमुना आदि नदियाँ इसके स्नेह की अमृत धारायें हैं। यह सारे संसार का भरण-पोषण करने वाली है। अपनी उदार भावनाओं से समस्त विश्व को मातृ-स्नेह प्रदान करती है। इन्हीं भावों को हमारे ऋषियों ने निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया है।

विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा
हिरण्य—वक्षा जगतो निवेशिनी
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्नि
इन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ।

अथर्ववेद 12/1/6

'हे पूजनीया माँ! तू समस्त भू-मण्डल का भरण-पोषण करने वाली है, सभी प्रकार के खनिज पदार्थों को अपने गर्भ में धारण करती है, तेरे ही प्राङ्गण में सर्वप्रथम साम-रस गुञ्जारित हुआ था, तूने अपनी ज्ञान—ज्योति से अज्ञान-तिमिर को नष्ट कर विश्व को उद्-बोधित किया था। तू हमारे राष्ट्र के सभी प्रकार के धनों से अलङ्कृत कर'। इसी भाव को वेद की दूसरी ऋचा भी सम्यक् परिस्फुट करती है—

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं
राष्ट्रे दधातूत्तमे ।

अथर्ववेद 12/1/8

'हमारी मातृ-भूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में उत्तम तेज, बल तथा शक्ति को धारण करावे।'

हम वीर-भूमि के वीर-सैनिक हैं, जो कभी भी अरिदल से पराजित नहीं हुए। सर्वदा अजेय, शत्रु संहारक होकर अपने वीरो-चित गुणों से सर्वोत्कृष्ट रहे हैं। अतः यदि कोई अज्ञान और प्रमादवश हमारे राष्ट्र को नष्ट करना चाहता है और आक्रमण करने का दुःसाहस करता है, तो हम अपनी मातृ-भूमि से आशीर्वाद प्राप्त कर युद्ध के लिए कटिबद्ध होंगे।

समाधि के लिए सात प्रतिबन्धक

□ स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज

क्षुद्र कीट से ले मनुष्यमात्र सुख शान्ति के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहता है। महर्षियों की अनन्त कृपा है कि उन्होंने सन्मार्ग दर्शन कराया। योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने इस अन्तिम छोर पर पहुँचने के लिए अष्टाङ्ग योग पद्धति पर चलने वाले मानव को ही वास्तविक सुख शान्ति या आनन्द की प्राप्ति होती है, ऐसा कहा है।

प्रत्येक विद्वान् चाहे वह किसी भी देश या जाति विशेष में हो, वास्तव में ज्ञानवान् हो उसने मनुष्य जीवन का उद्देश्य उत्तम स्वच्छ पवित्र और उज्ज्वल परमपद की प्राप्ति करना ही बतलाया है। परमपद की प्राप्ति का साधन वास्तव में अष्टाङ्ग योग यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान व समाधि बताये हैं। सात मंजिलें तय करने के पश्चात् सुख शान्ति तथा परमानन्द पाने के लिए समाधि की परमावश्यकता है। समाधि शास्त्र प्रसिद्ध शास्त्र तथा सभी महात्माओं की अनुभव सिद्ध वस्तु है। समाधिस्थ होने वाले साधक को चिरभूमि पर आने वाले विघ्नों को पहले दूर करना पड़ेगा। निर्मल चित्त ही समाधिस्थ हो सकता है। सन्मार्ग-दर्शन में स्वामी सर्वदानन्दजी विघ्नों को दर्शा रहे हैं, जिनकी ओर ध्यान देना साधक के लिए परमावश्यक है।

1. चित्त का चंचल होना—संशय तथा विपर्यय ज्ञान की हलचल से चित्त चंचल रहता है। चंचल चित्त सभी अनर्थों की आधार-भूमि है। चंचल चित्त में समाधि का नामोनिशान भी नहीं हो सकता। सो इस चंचलता को दूर करने के लिए उसके संशय तथा विपर्यय ज्ञान को दूर करना होगा। सर्वथा शान्त स्थिर चित्त ही समाधिस्थ हो सकता है।

2. इच्छा बाहुल्य—यह भी समाधि के लिए बाधक है। भगवान् श्रीकृष्ण जी ने भी गीता में कहा है—सभी पापों का मूल कारण इच्छा उत्पन्न होने पर जब पूर्ति के साधन नहीं होते, तो चित्त चंचल होकर मूढ़ावस्था को प्राप्त होता हुआ, अनर्थ की ओर झुक जाता है। ऐसी अवस्था में साधना कैसे हो सकती है। अतः साधनों के होते हुए भी इच्छा की अधिकता करनी चाहिए। चाह गई चिन्ता मिटी मनुवा बेपरवाह, जिनको कुछ नहीं चाहिए वही शाहन्शाह। दैवी सम्पदा के इच्छुक को भौतिक इच्छाओं का त्याग करना पड़ेगा।

3. मिताहार भी समाधि के लिए सहकारी है। जो शरीर को अस्वस्थ बनावे, शक्ति को कम करे, वह भोजन अहितकर है। हितभुक् ऋतुभुक् तथा मितभुक् इसीलिए

कहा गया है। भोजन पवित्र रुचि के अनुकूल समयानुसार नेक कमाई का तथा सात्विक होना चाहिए। 'जैसा अन्न वैसा मन' सो समाधिस्थ मन पर आहार का भी प्रभाव पड़ता है। साधक के लिए मिताहारी होना परमावश्यक है।

4. शोक चिन्ता—समाधि सम्पादन में रखने वाले साधक को ऐसे कार्यों से सर्वथा दूर रहना चाहिए, जो अन्तःकरण में शोक और चिन्ता के उत्पादक हों। चिन्ता तथा

7. आत्मश्लाघा—समाधि में रुचि रखने वाले को आत्मश्लाघा से बचना चाहिए। योग दर्शन के विभूतिपाद के 51 सूत्र में महर्षि ने कहा 'स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट-प्रसङ्गात्।' आत्मश्लाघा का बन्धन बहुत ही कड़ा है। लोकैषणा को जीतना सबसे कठिन है। जिन क्लेशों से दुःखी होकर कठिन अभ्यास से योग का दीपक प्राप्त होता है, अभिमान तथा आसक्ति उसे बुझाकर पुनः संसार के जटिलपाश में बाँधने वाले हैं। इनसे पृथक् रहना रहना कल्याणकारक है। आत्मश्लाघा, आत्मसम्मान तथा आत्मगौरव समानार्थ प्रतीत होते हैं परन्तु इनमें भेद है, गुणहीन प्रशंसा का नाम आत्मश्लाघा है। यह एक प्रकार की अविद्या है, जो मानव-समाज को अति निर्बल बना देती है। अतः साधक आत्मश्लाघा का भी परहेज करे।

शोकजनक सामग्री से दूर रहते हुए—"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते न येषां चेतांसि त एव धीराः।" चिन्ता के कारण होते हुए भी साधक विवेक द्वारा इतना वीर बने कि चिन्ता उसे प्रभावित न करे।

5. मितभाषी—समाधि से प्रेम करने वाले साधक को वाणी पर संयम रखना जरूरी है। पहले तोलो पुनः बोलो। बोलने से पूर्व मन में सोच विचार करो कि मेरी वाणी अनुपयोगी वा दुःखद शब्द तो नहीं रही। कम बोलने वाला मानव यदि मेधावी है तो उसे अधिक समझने की शक्ति आ जाती है। बाह्य शब्दों (निन्दा चुगली व्यर्थ वार्तालाप) से रहित होने से समाधिस्थ साधक अन्तःकरण की आनन्दप्रद अनहद ध्वनि सुन सकता है, अतः विचारपूर्वक करने का स्वभाव होना चाहिए।

6. एकान्त सेवन—इसके चित्त की चंचलता दूर होती है। एकान्तसेवी का स्वभाव उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बनने लगता है। वह मितभाषी भी हो जाता है। घर जंगल व वन कहीं भी हो, उसे अपने मन बहलाव के लिए किसी की भी आवश्यकता नहीं रहती वह अपनी ही मस्ती में अलमस्त रहता है, तथा उसका मनोरञ्जन प्रभु प्यार हो जाता है। जब भी अकेला होता है मनन निदिध्यासन तथा समाधान में मस्त रहता है। उसे शोरगुल तथा सांसारिक कोलाहलपूर्ण दृश्य का देखने रुचिकर नहीं लगते। अब धीरे-धीरे वह अटूट आनन्दप्रद दृश्यों को मानसिक चित्रपट पर देखने लगता है। अन्दर के पट सभी खुलेंगे जब साधक बाह्यपटों को बन्द करेगा। अतः साधक को अधिक भीड़ भी अहितकर है।

☐ महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

विपुला प्रकृति और सृष्टि-प्रक्रिया का रहस्य

[कविराज गोपीनाथजी का यह लेख श्री डा. जे. पी. अवस्थी के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।]

(गतांक से आगे)

हम लोगों के देखते-देखते बाबा ने शून्य में झटका देकर एक-एक करके उपर्युक्त द्रव्य पदार्थ एकत्रित कर लिए फिर उनके मिश्रण से शास्त्रोक्त अपूर्व गन्ध तैयार कर दी। मैंने निवेदन किया—बाबा हमारी इच्छा है कि इस गन्ध को हम अपने पास कुछ समय तक रख सकें, ऐसी व्यवस्था कर दीजिये। बाबा ने एक शीशी लाने को कहा, मैं एक छोटी शीशी ले आया। बाबा ने अपनी लोकोत्तर सृष्टि प्रक्रिया से उस गन्ध को तेलमें परिवर्तित करके उस शीशी में भर दिया। वह मेरे पास बहुत दिनों रही। म. म. पण्डित प्रमथनाथ उस गन्ध को सूँघकर भाव-विभोर हो गये थे।

सृष्टि-प्रक्रिया—

बाबा बड़े ही मर्यादावादी थे। परमहंस-वृत्ति धारण करते हुए भी वह अपने कुल गुरु को कौटुम्बिक परम्परानुसार निरन्तर सम्मान के रूप में कुछ न कुछ द्रव्य, वस्त्रादि दिया करते थे।

एक बार कुलगुरु के पुत्र उनका दर्शन करने काशी आये। बाबा ने कई दिन तक अपने आश्रम में ठहराकर उनका स्वागत-सत्कार किया। विदा होते समय जब बाबा उन्हें रुपये देने लगे तब वह बोले—'बाबा, रुपया-पैसा तो हम सभी जगह पाते हैं।' आप हमें ऐसी वस्तु दें जिससे आपकी स्मृति सदा बनी रहे। मेरी इच्छा है कि आप सोने की एक ऐसी अँगूठी मंगा दें जिसके ऊपर देवी की मूर्ति बनी हो, नीचे हमारा नाम लिखा हो। बाबा ने कहा—अच्छा बैठ जाओ, मिल जायेगी।

इसके बाद उन्होंने लोगों हम लोगों के सामने ही प्रकृति से आकृष्ट करके ठीक उसी प्रकार की अँगूठी कुलगुरु के पुत्र को दे दी। वह उसे देखकर स्तम्भित रह गये। हम लोगों का भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बाबा ने इसका समाधान करते हुये कहा—प्रकृति पूर्ण है सृष्टि-प्रक्रिया के द्वारा उससे अभीप्सित वस्तु प्राप्त की जा सकती तब इन रुपयों का क्या होगा? बाबा बोले बात तो ठीक है। अच्छा ठहरो अभी पूछकर आते हैं। बाबा भीतर गये थोड़ी देर बाद लौटकर कहने लगे—ठीक है ये रुपये उमा भैरवी माँ ज्ञानगंज के लिए। तब मैंने कहा—आप दे दीजियेगा। 'नहीं, भैरवी माँ स्वयं तुम्हारे हाथ से ले जायेगी। मैंने लिफाफे को बन्द कर दिया और अपने हाथ में रख लिया। कुछ देर बाद पूछा—कब तक ले जायेंगी? बाबा बोले 'अभी' वह फिर बोले—लिफाफा खोलकर देखो। मैंने लिफाफा खोलकर देखा,

र भीतर रुपये नहीं थे। लिफाफे पर हाथ के चिह्न दिखाई दे रहे थे, कमल जैसी भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी। बहुत दिनों तक यत्न के साथ लिफाफे को रखे रहा। लोक-दृष्टि से तिरोहित होने पर भी अभी तक बाबा का मेरे साथ व्यवहार पहले जैसा ही है। गुजरात के एक भक्त जिन्होंने बाबा को नहीं देखा था अब भी उनके दर्शन पाते हैं। उनके घर कभी-कभी बाबा का आविर्भाव होता है। उनका एक लड़का बाबा के आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ। उस परिवार से अनेक घटनायें जुड़ी हुई हैं।

भौतिककरण (मैटेरियलाइजेशन)

एक दिन बाबा अपने आश्रम में विराजमान थे। कामाख्या बनर्जी पुराने शिष्य समुद्र स्नान करने गये। असावधानता के कारण उन्हें चोट आ गई। व्याधिग्रस्त होते हुए भी वे सत्संग में उपस्थित होते। कटक से आये एक आई.एम.एस. महाशय भी बैठे थे बाबा ने उक्त डाक्टर महोदयसे इस दर्द की औषधि पूछी। जर्मनी से एक तैलात्मक औषधि निकली है इस रोग का उपचार होता है स्वयं आजमाइश की है। यह कलकत्ते में मिल सकती है डा. महोदय ने कहा। बाबा ने पूछा औषधि के उपकरण आपको ज्ञात है डा. ने कहा नहीं, परन्तु व्यवहार किया है। बाबा ने तत्काल पत्थर की एक कटोरी मँगवाई और एक स्टूल पर रख दी बाबा ने अपना हाथ उसमें लटकाया तत्काल तेल की भाँति बूँद-बूँद कोई पदार्थ कटोरी में गिरने लगा और वह काफी भर गया।

बाबा ने डाक्टर से संकेत से कहा 'तुम्हारी दवा यही है न!' जाँच कर डा. ने अपनी स्वीकृति दी। बाबा बोले 'तुम्हारे चित्त में संस्कार रूपेण औषधि के प्रत्यक्ष दर्शन के कारण जो वस्तु विद्यमान थी उसी को मैंने भौतिक रूपेण उत्पन्न कर दिया। यह प्रत्यक्षीकरण का व्यापार है।" कामाख्या बनर्जी ने तेल का सेवन किया और व्याधि-मुक्त हुए।

गुरुदेव का आविर्भाव और रोग शान्ति

सन् 1929-30 की बात है मेरी स्त्री की तबियत भयंकर रूप से खराब हुई काफी कुछ किया गया डाक्टर भी असहाय थे। सोचा गुरुदेव को तार दें। रात 11-12 के लगभग देखा रोगी के कमरे में पद्मगन्ध आ रही है उसी समय से पत्नी की तबियत सुधरने लगी आविर्भूत गुरुदेव के स्वरूप को प्रणाम करते ही रोग उपशम हो गया। दूसरे दिन पत्नी बोली—अभी-अभी गुरुदेव आये थे उनकी दाढ़ी मेरे शरीर को छू गई। कुछ दिनों बाद पत्नी पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गई।

एक दिन एकान्त में इस घटना को लेकर कुछ प्रश्न किये। 'बाबा! कलकत्ता रहते काशी में उपस्थित होकर मेरी स्त्री की प्राण-रक्षा कैसे की? एक साथ दोनों स्थानों पर वर्तमान कैसे सम्भव हुआ? तुम योगी का क्या अर्थ समझते हो? योगी का अर्थ है, अखण्ड सत्ता से नित्ययुक्त होना। वह देश-काल से अवरुद्ध नहीं होता। मैं इसी शरीर से सर्वत्र, सर्वकाल, वर्तमान रहता हूँ। फिर काशी पहुँचने की बात ही क्या?'

योग-विभूति और इच्छा-शक्ति

एक दिन बाबा से पूछा—योगी के लिए अपनी शक्तियों अथवा विभूतियों का बाहर प्रकाश करना उचित है या नहीं?' उन्होंने बताया—जो शिक्षार्थी है और अभी मार्ग में प्रविष्ट हुए हैं, उनके लिए योग की विभूतियों का प्रदर्शन करना अनुचित एवं हानिकारक

है, क्योंकि इससे अहंकार अथवा आसक्ति की वृद्धि हो सकती है। उन्हें इन सब शक्तियों को इस प्रकार गुप्त रखना चाहिए कि निकटतम रहने वाले व्यक्ति को भी इसका पता न लगे। किन्तु जो सिद्धयोगी अधिकारी बन गये हैं उनके लिए इन शक्तियों का कोई प्रयोजन नहीं होता, इस पर भी वे पूरी तरह से जय प्राप्त कर चुके होते हैं। परन्तु प्रथम—दीक्षित जिज्ञासु के लिए प्रयोजन के अनुसार इनका प्रदर्शन आवश्यक होता है। दिखाये बिना और मर्म-रहस्य समझाये बिना उनके लिए सूक्ष्म तत्व में प्रवेश करना कठिन है। प्रथम-प्रवेशार्थी का दृढ़-विश्वास रखने के लिए यह आवश्यक होता है। साधारणतया लोग जिसे असम्भव समझते हैं, वह असम्भव नहीं रहता। सिद्धयोगी के लिए कोई वस्तु असंभव होती ही नहीं, क्योंकि शक्ति के अधीन सब कुछ है। अघटन का घटन महाशक्ति के ही अधीन है।

मैंने शंका की— 'योग मार्ग में शक्ति का विकास आवश्यक है या सरल विश्वास?' उनका उत्तर था दोनों सिद्धान्त ठीक हैं। पहली अवस्था में चित्त चंचल रहता है मनुष्य का मन प्रायः शान्त नहीं रहता। विश्वास ही प्रधान है। इच्छा-शक्ति सर्वोत्तम है। इच्छा-शक्ति प्राप्त होने पर उसी से ज्ञान-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति का भी कार्य हो जाता है। इच्छा से ही सर्वज्ञान होता है। इच्छा से ही सर्व-क्रिया हो सकती है। इच्छा-शक्ति होने पर प्राकृतिक उपादान लेकर ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति काम कर सकती है। यही विज्ञान है। विज्ञान के अनन्त प्रकार हैं—सूर्य-विज्ञान, चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, समय-विज्ञान आदि। परन्तु 'इच्छा शक्ति' विज्ञान नहीं है। शक्ति का अर्थ है चैतन्य। जब तक आत्मा अचेतन रहती है अर्थात् ज्ञान को प्राप्त नहीं करती तब तक उसकी इच्छा-इच्छा मात्र है, इच्छा-शक्ति नहीं। ज्ञान प्राप्त करने के मायने ही है आत्मस्वरूप या महास्वरूप का साक्षात्कार। क्या इस साक्षात्कार के बाद इच्छा रहती है? बाबा ने स्पष्ट किया 'अवश्य रहती है, किन्तु महा-इच्छा के रूप में। यह न रहे तो परमेश्वर का ईश्वरत्व ही कहाँ से होगा। शास्त्रों में कहा है 'इच्छा मात्रं प्रभो सृष्टिः' (माण्डूक्योपनिषद् कारिका गौड़ पाद) प्रश्न निवेदित किया—'इच्छा-शक्ति ही तो चरम शक्ति है उसकी प्राप्ति से योगी में ईश्वरत्व आ जाता है। क्या यही चरम सिद्धियाँ हैं? बहिर्मुखी शक्तियों में इच्छा-शक्ति ही प्रधान है। सृष्टि व्यापार की दृष्टि से यह सर्वप्रधान शक्ति है। अन्त में योगी अन्तर्मुख हो इच्छा-शक्ति को भी श्री भगवान् के चरणों में अर्पित कर देते। इच्छा की निवृत्ति न हो तब तक आनन्द का उदय कहाँ?

—: हम क्या करें :—

□ श्री रवीन्द्रनाथ झा

1. हम क्या करें? .... जो तुम्हें करना चाहिए।
2. हमें क्या करना चाहिए? .... वही जिससे तुम्हारा कल्याण हो।
3. कल्याण क्या है ? .... ब्रह्म की प्राप्ति।
4. ब्रह्म क्या है ? .... आत्मा ही ब्रह्म है।
5. आत्मा क्या है? .... आत्मा को देखा नहीं जा सकता, जाना जाता है। आत्मा निश्चल है फिर भी मन से अधिक गतिशील है। आत्मा चेतन है, अमर है अजन्मा है, असीमित है, जन्म-मृत्यु से परे है। वह दूर है और समीप भी है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और विशाल से भी विशाल है। वह सबके बाहर है और अन्दर भी। उसके रहने से शरीर प्राणयुक्त है और न रहने से शरीर मृत है।
6. वह कहाँ रहता है ? .... ग्यारह दरवाजे वाले पुर में।
7. ग्यारह दरवाजे वाला पुर कहाँ है ? .... स्वयं तुम हो।
8. वह कैसे ? .... ग्यारह दरवाजे वाला पुर यह शरीर ही है। 2 आँख, 2 कान, 2 नाक, 1 मुँह, 1 नाभि, 1 ब्रह्मरंध्र, 1 शिश्न व गुदा =11 दरवाजे।
9. आत्मा को कैसे जाना जाय ? .... वह पुरातन-पुरुष कठिनता से दीख पड़ने वाले गुह्य स्थान से अनुप्रविष्ट बुद्धि में स्थित, आध्यात्म योग की प्राप्ति द्वारा जाना जाता है।
10. आत्म-ज्ञानी के लक्षण क्या हैं ? .... आत्मा का ज्ञान हो जाने पर बुद्धिमान पुरुष हर्ष-शोक से मुक्त हो जाता है।

☐ आचार्य श्री दासलाल

साधना सिद्धि गुरु कृपा सापेक्ष है !

शास्त्रों में सद्गुरु की अनन्त महिमा गायी गई है। गुरु कृपा कटाक्ष के बिना साधना की सिद्धि में संशय ही है। योगियों व अन्य साधकों के जीवन-चरित्र का अवलोकन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि गुरु कृपा से ही उनके जीवन में प्रकाश आया है। वे सभी इस बात को स्वीकारते हैं कि साधना सिद्धि गुरु कृपा सापेक्ष है।

आदिनाथ भगवान शंकर के वचन इसी बात को पुष्टि कर रहे हैं।

पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम् ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिव भाषितम्" ?

अर्थात्—अनेक जन्मों के पुण्य-पुञ्ज के फलस्वरूप सिद्ध-पुरुषों का सानिध्य मिलता है तब उन सिद्धयोग की कृपा से ही साधक योगी बनता है जिससे उसका अज्ञान जन्य संसार नष्ट होता है इसके नाश का सिद्ध कृपा के बिना अन्य उपाय नहीं है।

गुरुदेव एवं सद्गुरु सत्ता देश, काल, वस्तु से सर्वथा अपरिच्छिन्न सत्ता है। योग-दर्शन में ईश्वर को ब्रह्मादि का भी गुरु कहा है जो काल (गणना) अर्थात् परिणाम एवं नाश से सर्वथा परे है।

साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि सद्गुरु सत्ता वही सत्ता है जिसने चराचर प्राणी को सर्वत्र अभिव्याप्त किया हुआ है जिसके भ्रू-विलास से असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि पालन और संहार होता है। जिससे मूल-प्रकृति उत्पन्न होती है। वही सद्गुरु तत्व सत्स्वरूप ईश्वर है जो आत्म-तत्त्व के रूप में हर जीव में अविनाशी रूप से विद्यमान है।

सद्गुरु सत्ता नाम रूप से परे की सत्ता है। गुणात्मक पदार्थ नाम, रूप वाला होता है।

नाम रूप से अतीत ये गुरु सत्ता ही चिन्मय ब्रह्म तत्त्व है। जीवों का कल्याण करने के लिए इसी चैतन्य स्वरूप से मूर्त रूप में सद्गुरु का आविर्भाव होता है। जिस प्रकार से बर्फ जल का ही ठोस रूप है वैसे ही ब्रह्म का घनीभूत रूप ही गुरुदेव के रूप में प्रकट होता है। गुरुदेव ब्रह्म का ही अत्यधिक साकार रूप है। इसी साकार रूप का महत्व साधक के लिए है। ये साकार रूप ही जीव को ब्रह्मत्व पद पर पहुँचाने में सक्षम है। गुरुदेव मानव शरीर धारण कर इस पृथ्वी पर आते हैं। सम्पूर्ण प्रकृति एवं प्रकृतिजात वस्तुओं पर उनका पूरा-पूरा नियन्त्रण होता है। सारी सृष्टि उनकी मुट्ठी में होती

है। समस्त प्राणिमात्र की मन-बुद्धि का ईशन व संचालन वस्तुतः उन्हीं से होता है। ऐसे गुरुदेव के साथ शिष्य का सम्बन्ध संस्कार जुड़ जाने पर यह सम्बन्ध शिष्य के परम-कल्याण का हेतु बनता है। संसार में बन्धु-बान्धव का सम्बन्ध बन्धन में ही डालने वाला ही होता है किन्तु गुरुदेव का सम्बन्ध सर्वबन्धन को काटने वाला होता है। शरीरधारी गुरुदेव की ही ब्रह्मभाव से उपासना का आदेश उपनिषदों ने दिया है—

"यस्तु देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ"

अर्थात् जिसकी परमात्मा में, जैसी पराभक्ति होती है वैसी ही भक्ति गुरुदेव में होनी चाहिए। ऐसे साधक को सकल विद्यायें प्रकाशित हो जाती हैं और सारी साधनायें सिद्ध हो जाती हैं।

गुरुदेव के सेवक को ही मन्त्र अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं "विजानन्ति महावाक्य गुरोश्चरण सेवया" गुरुदेव की चरण सेवा से ही महावाक्यों का साक्षात्कार होता है। गुरुदेव की कृपा से ही ब्रह्म तत्व गुरु तत्व एवं आत्मतत्व के अभेद स्वरूप एकरूपता को समझ सकता है। गुरु-गीता आदि पावन ग्रन्थों में "गुरु साक्षात् परब्रह्म" अर्थात् गुरु ही परब्रह्म है ऐसा कहा है। अन्यत्र भी एक शास्त्र —वेद शास्त्र :

वेदशास्त्र वान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्
गुरोः भक्तिं सदा कुर्यात् श्रेयसे भूयसे नरः गुरुदेव हरिः साक्षान्नान्यदित्य ब्रवीत्श्रुतिः।

अर्थात्—वेद शास्त्र अन्य ग्रन्थ चरण रज के समान त्याज्य हैं। कल्याणकामी व्यक्ति को सदा ही गुरुदेव की भक्ति करनी चाहिए क्योंकि 'गुरु ही साक्षात् हरि है अन्य कुछ नहीं ऐसा कथन है।

वास्तव में पूर्ण गुरुदेव के मिल जाने पर शास्त्र-ज्ञान का कोई महत्व नहीं रह जाता शास्त्रों के शुष्क ज्ञान से प्रायशः व्यक्ति भ्रमित ही रहता है। हर व्यक्ति अपनी संस्कार जन्य दृढ़ मूल अवधारणाओं से आबद्ध रहता है। उसी के अनुसार उसकी मान्यता चिंतन एवं क्रियाकलाप रहते हैं। तत्व का यथार्थ बोध उसे नहीं हो पाता।

गुरुदेव की शरणागति से ही मानव जीवन में परिवर्तन व प्रकाश आता है। शास्त्र-ज्ञान से मनुष्य अपने स्वभाव एवं दुर्वृत्तियों से अलग नहीं हो पाता गुरुदेव के सान्निध्य से ही साधक का स्वभाव बदल सकता है एवं गुरुदेव के संकल्प-मात्र से उसकी वृत्ति सतोगुणी बन जाती है। समस्त प्राणिमात्र के मन-बुद्धि पर शासन करने वाले गुरुदेव के लिए यह कार्य बहुत ही सहज है। जिन साधकों को ऐसे गुरुदेव की चरण-शरण मिल जाता है वे धन्य हो जाते हैं। उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य व्यक्तियों का भी कल्याण हो जाता है। "यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावना भवन्ति संसार सुतारणा शिवः" जिनकी कृपा से पतित भी सुपावन हो जाता है और अन्यों को तारने वाला हो जाता है. यह सब गुरुदेव की कृपा-दृष्टि से ही सम्भव हो पाता है।

गुरुदेव के समान शिष्य का कल्याण-कांक्षी दुनिया में और कोई नहीं होता। वे शिष्य को अपने ही समान बना देते हैं, अपना स्वरूप प्रदान कर देते हैं। गुरुदेव जैसा प्यार अपने शिष्यों को देते हैं ऐसा प्यार—अन्य कोई नहीं दे सकता। "माता से हरि सौ गुना हरि से गुरु सौ बार" गुरुदेव के प्यार का अनुभव उन्हें ही हो सकता है जिन्होंने ऐसा प्यार पाया हो। आत्मदर्शन-आत्मज्ञान

कराना गुरुदेव के अधीन है। "यमेवैष वृणुते तेनैव लभ्यः" जिसको गुरुदेव अपना लेते हैं वही गुरु सत्ता या आत्म-सत्ता को जान सकते हैं। गुरुदेव मनुष्य को पशु से नर फिर नारायण बना देते हैं। जो मन्दमति गुरु विमुख होकर साधना की इच्छा रखते है वह कदापि सफल नहीं हो सकते। कदाचित् कुछ उपलब्धि हो भी जाये तो उसे अहंकार हो जाता है परिणामस्वरूप पतन के गर्त में गिर जाता है। अपने अनेक गुरु-भाई जिनकी ध्यान स्थिति कभी बहुत अच्छी रही गुरु में श्रद्धा की कमी व विमुखता के कारण उनका पतन हो गया, ऐसे अनेक साधक देखने में आते हैं।

गुरुदेव शिष्य को जब दीक्षा दे देते हैं तभी से संकल्प शरीर से शिष्य के अन्तस् (हृदय गुहा) में उनका वास हो जाता है। शिष्य के स्थूल सूक्ष्म एवं कारण शरीरों के मल-विक्षेप एवं आवरण का पर्दा हटने लगता है संस्कारों का भुगतान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से होने लगता है। गुरुदेव अपने अनेक रूपों से अथवा अपने ही शरीर पर लेकर शिष्य के क्लिष्ट संस्कारों का भुगतान करा दिया करते हैं। शिष्यों के उर प्रेरक बनकर गुरुदेव अपने बच्चों की जीवन नैया को चलाते हैं। गुरुदेव सर्वसमर्थ होते हैं। सामान्य तृण से भी कार्य करा लेने में समर्थ होते हैं। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने टहलसिंह को माध्यम बनाकर महामण्डलेश्वर के उदर पीड़ा का सहज में ही प्रशमन कर दिया। जिसको माध्यम बनाकर काम कराना चाहते हैं करा देते हैं।

गुरुदेव के सानिध्य में शिष्य के क्लिष्ट संस्कारों का क्षय स्वतः ही होता रहता है। साधना पथ के व्यवधान दूर हो जाते हैं। हर व्यक्ति के श्वास-प्रश्वास से सूक्ष्म परमाणु निकलते रहते हैं। साधारण व्यक्तियों के ये परमाणु कृश तथा मलिन होते है। योगी के परमाणु अत्यन्त बलिष्ठ व तेजस्वी होते है। गुरुदेव के सानिध्य से व उनके चिन्तन से शिष्य के परमाणु गुरुदेव के तेजस्वी परमाणुओं में विलय हो जाते हैं और वह भी तेजस्वी बन जाते हैं। ये परमाणु आत्मिक तेज को दर्शाते है। सद्गुरुओं के संग से शिष्य का आत्म तेज स्वाभाविक ही अभिवृद्धि पाता है। उनके आशीर्वाद से ही साधक कृतकृत्य हो जाता है।

परम सुहृद गुरुदेव चाहते हैं कि शिष्य का साक्षात् सम्पर्क बना रहे। साधना के द्वारा सूक्ष्म सम्पर्क तो विरले ही साध सकते है। बाह्य सम्पर्क से दोनों तरफ से चिन्तन क्रम बना रहता है जो स्वाभाविक ही आत्मिक उन्नति का कारण बन जाता है।

गुरुदेव देखने मात्र से सम्भाषण से। संकल्प मात्र से ही शिष्य को परतत्व का बोध करा देने में समर्थ होते हैं। अपने पूज्यपाद गुरुदेव बतलाया करते थे कि श्री प्रभुजी ने विधि-विधान पूर्वक दीक्षा बहुत कम लोगों को दी थी। उनके अमोघ संकल्प से ही शिष्य का उत्थान होता था। गुरुओं के शक्ति संचार की अनेक विधियों का शास्त्रों में उल्लेख है। उनके कर-कमलों के स्पर्श से शक्ति संचारित होती है जिसे स्पर्श दीक्षा कहते हैं।

इसी प्रकार से आँखों से देखने से शक्ति संचार होता है जो दृग्-दीक्षा कहलाती है। उपरोक्त सभी विधियों का प्रयोग शाम्भवी दीक्षा कहलाता है। श्री प्रभुजी प्रायः शाम्भवी दीक्षा ही देते थे।

स्थूल शरीर से विद्यमान गुरुदेव से सहज में ही शिष्य का परम कल्याण हो सकता है। अव्यक्त ईश्वर को भी गुरु मानकर साधना की जाती है किन्तु "अव्यक्ता हि गतिर्दुःखम्"

के अनुसार यह साधनाक्रम अत्यधिक कष्ट साध्य है।

सद्गुरु सत्ता यद्यपि व्यापक सत्ता है किन्तु आकृति विशेष में उस सत्ता का प्राकट्य होता है अतैव विशेष आकृति व स्वरूप की उपासना से ही साधक का कल्याण सम्भव है। साधक को अपने गुरुदेव में ही एकनिष्ठ रहना चाहिए। जो एकनिष्ठ नहीं हो सकते उन्हें अव्यभिचारिणी गुरु भक्ति नहीं मिलती। गुरुदेव के पाञ्चभौतिक शरीर के तिरोभाव होने से उस आकृति में विद्यमान शक्ति बनी ही रहती है। इसीलिए पतंजलि-देव ने "वीतराग विषय वा चित्तम्" का सिद्धान्त प्रतिपादन किया है। वीतरागी सिद्ध गुरुओं की शक्ति उनकी आत्मिक शक्ति है जो सदैव सर्वत्र विद्यमान रहती है। शिष्य अपने मन की एकाग्रता द्वारा गुरुदेव की उपासना से गुरुदेव से आत्म-ज्ञान तथा कृपा-लाभ कर सकता है।

धन्य हैं वे लोग जिन्हें परम सिद्ध गुरु मिल जाते हैं तथा साधना में अधिरूढ़ हो जाते हैं।

ऐसे गुरुनिष्ठ एवं सद्गुरु उपासक ही मुक्ति-भुक्ति प्राप्त करते एवं कल्याण भाजन बनते हैं हमारे लिए गुरुदेव ही सब कुछ है उनसे अतिरिक्त कुछ नहीं है इस तत्व को गुरु गीता में भगवान शंकर ने स्पष्ट शब्दों में समझाया है—

गुरुः शिवो गुरुर्देवो गुरुर्बन्धु शरीरिणाम्
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो, गुरोरन्यन्न विद्यते

अर्थात्—गुरु ही शिव है, गुरु परमदेव है। गुरुदेव ही बन्धु है। गुरु आत्मा तथा जीव है। गुरु के अतिरिक्त कुछ नहीं है। गुरु गीता के इन वचनों का तात्पर्य समझते हुए शिष्य को गुरु तत्व की उपासना श्रद्धापूर्वक करनी चाहिए।

कोई बहाना न हो

□ श्री श्यामलाल मिश्रा

ख्वाब में आ गये मेरे मोहन सुनो,
सामने आओ कोई बहाना न हो।
तुमने लाखों की बिगड़ी बनाई प्रभो,
लाज मेरी बचा दो बहाना न हो॥
मेरे जीवन की नैया भँवर में फँसी,
और साहिल का कोई ठिकाना नहीं।
ले लो पतवार गुरुवर, न देरी करो,
डूबते से बचा दो बहाना न हो॥
थे सुदामा के तन्दुल चबाये प्रभो,
साग सूखे विदुर घर पै खाये प्रभो।
भक्त सदना भी अपने बनाये विभो,
कुछ मुझे भी बना लो बहाना न हो॥
गरीब जान के आश्रम मुझे बुला लेना,
यतीम जान के नजर लगा देना।
क्या कटेगा वहाँ सूनी मुझे शिक्षा देना,
नींद आ जाये तो प्रभुवर जगा देना॥
योग की भीख में जब भी माँगू प्रभु।
झोली भरने में कोई बहाना न हो॥

योगी बालकृष्ण दास वैरागी

अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

[पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी ने इस लेख में अपनी लेखनी से अपने आराध्य प्रभुवर श्री रामलाल जी महाराज की अलौकिक योग-लीलाओं का पाठकों को दिग्दर्शन कराने की कृपा की है। लेख वस्तुतः पठनीय, मननीय और ज्ञानवर्धक है। —सम्पादक]

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी जब नेपाल हिमालय से लौटकर आए, तब यत्र तत्र भ्रमण करते हुए कुम्भ के मेले पर हरिद्वार आये। उस मेले में आए हुए उनके कुटुम्बी-जनों ने उन्हें पहचान लिया। देश में योग-प्रचार के निमित्त परिवार वालों के आग्रह को स्वीकार कर वह अपने घर लौटे। उसी समय से श्री प्रभुजी ने अपने विरक्त वेष को त्याग कर साधारण पंडित के वेष में रहना प्रारम्भ किया, ताकि कोई उनके वास्तविक स्वरूप एवं सामर्थ्य को पहचान न सके। उस समय श्री आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी महाराज अमृतसर में भाई के कटरे में निवास करते थे। उनके प्रखर तेज से आकर्षित होकर समय-समय पर कितने ही विरक्त जन श्री प्रभुजी के दर्शनार्थ आया करते थे। जिन लोगों को श्री कृपानिधि की कृपा से दिव्य अनुभूतियाँ होती थीं, वे सभी श्री प्रभुजी का पूजन सदैव ईश्वरीय बुद्धि से किया करते थे एवं उनकी असीम शक्ति के अनुरूप ही अनेकों विधि दिव्य स्तुतियाँ भी करते थे। इस प्रकार पण्डित वेश में छिपे होने पर भी अनेक उनकी विविध दिव्य शक्ति-सामर्थ्य से भी परिचित होते जाते थे, एवं उनके चरणकमलों की महिमा नगर भर में फैलती जाती थी।

संसार में दोनों प्रकार के ही मनुष्य हैं। एक ओर जहाँ श्री प्रभुजी के चरणानुरागियों की संख्या बढ़ रही थी वहीं दूसरी ओर कुछ मन्द बुद्धि उन कृपानिकेतन के चरणकमलों के प्रति ईर्ष्या भी रखते थे। ऐसे ईर्ष्यालु लोगों के लिए उनका बढ़ता हुआ वैभव असह्य था। उन लोगों के विचार थे—यह सब ब्राह्मण का पाखण्ड है, दम्भबाजी है। हममें और इनमें अन्तर ही क्या है? जैसे हम साधारण गृहस्थ हैं वैसे ही यह भी गृहस्थ मनुष्य है। ये अज्ञानी प्रभु जी के विशुद्ध आत्म-प्रकाश को न जानकर उन्हें आकृति-मात्र से साधारण व्यक्ति ही समझते थे। ये सोचने लगे यदि कोई करनी वाला साधु मिल जाय तो इनके इस सब प्रपंच का निराकरण करा दें। जिस प्राणी के अन्दर जिस प्रकार की तीव्र भावनायें बन जाती हैं, समय आने पर उसे उसी प्रकार का अवसर भी मिल जाया करता है।

अमृतसर में दुर्ग्याना नामक स्थान पर पक्के जलाशय से घिरा हुआ लक्ष्मी-नारायण जी का एक विशालमन्दिर है। श्री लक्ष्मीनारायण जी के मन्दिर के सामने दक्षिणी भाग में एक प्राचीन भैरवजी का मन्दिर भी बना हुआ था,

जहाँ पर भैरवजी की उपासना एवं सिद्धि के लिए साधु-महात्मा आया करते थे। दीपावली के अवसर पर तो देश-विदेश के साधुओं का यातायात यहाँ काफी संख्या में रहता है। श्री भैरवजी के मन्दिर में अनायास ही एक ऐसे महात्मा आ गये जिन्होंने बड़े प्रयास से भैरव सिद्ध किया था। वह महात्मा लोगों से मान प्राप्त करने के लोभ में अपने सिद्ध किए भैरवजी की शक्ति से लोगों के कई प्रकार के अच्छे और बुरे कार्य करते रहते थे। यह संयोग ही रहा कि श्री प्रभुजी से ईर्ष्या रखने वाला को भी उन महात्मा के दर्शन प्राप्त हुए। अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए उपयुक्त अवसर आया जानकर इन लोगों ने अत्यन्त विनम्रता से उन महात्माजी से प्रार्थना की—यहाँ पर एक गृहस्थ ब्राह्मण ने बड़ा दम्भ रचाया हुआ है। उनके शिष्य उन्हें साक्षात् भगवान् सदाशिव, विष्णु आदि कहकर उनकी पूजा करते हैं। न जाने उन्हें कौन सी सिद्धि है, जिसकी शक्ति से वह अपने पास आने वाले हर व्यक्ति को अपना बना लेते हैं। उनके सम्मोहन में बँधे सभी व्यक्ति उनकी सब प्रकार से उत्तम सेवा करते हैं। आप अपनी योगशक्ति से उनसे इस प्रपंच को छिन्न-भिन्न करके जनसाधारण का भला कीजिए। यदि इनके पाखण्ड का निवारण हो गया तो हम लोग अधिक से अधिक तन, मन, धन से आपकी सेवा करेंगे। महात्मा ने इन लोगों का दुराग्रह स्वीकार कर लिया एवं बड़े अहंकार में भरकर श्री प्रभुजी के दरबार में एक दिन जा पहुँचे। महात्मा के मन में अपने भैरवजी की शक्ति का बड़ा ही अभिमान था। वह अपनी शक्ति के सामने किसी अन्य का महत्त्व नहीं समझता था। इसी अभिमान के वशीभूत पहुँचते ही इसने प्रभु जी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया—अरे ब्राह्मण! यह क्या पाखण्ड फैला रखा है? तू स्वयं को ईश्वर कहकर पुजवाता है। यह पाखण्ड छोड़कर शीघ्र ही यहाँ से दूर हो जा। अन्यथा हम अपनी योग शक्ति से तुम्हें सीधा कर देंगे। श्री लीलानिकेतन उसके अज्ञान पर मन में हँसे, परन्तु ऊपर से अनजान जैसा व्यवहार करते रहे। कटुवचनों से जरा भी क्षुब्ध हुए बिना धीरे से संयत वाणी में बोले—अरे महात्मन्, हम तो साधारण ब्राह्मण हैं और आप बड़े महात्मा हैं। साधु तो स्वभाव से दयालु होते हैं, आपको ऐसे कटु शब्दों का प्रयोग करना शोभा नहीं देता। श्री प्रभुजी के इस प्रकार मान दिए जाने पर भी वह दुर्जन शान्त नहीं हुआ, न ही वह उनके इन भाव-गम्भीर शब्दों का आशय ही समझ पाया वह पूर्ववत् कुछ-कुछ कहता रहा, परन्तु श्री प्रभुजी शान्त ही रहे। अन्तर्यामी श्री प्रभु जी की अभिलाषा उन महात्मा का अपमान करने की नहीं थी। वे जानते थे कि यह थोड़ी सी बकवास करके स्वयं ही शान्त हो जायगा, और उसके भैरवजी की शक्ति भी यहाँ व्यर्थ ही रहेगी। अतः साधु के इस प्रकार बड़बड़ाने का परिणाम ही क्या हो सकता है? अन्ततः उसे निराश होकर लौटना ही पड़ेगा।

उस समय वहां हमारे गुरुभाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी भी श्री प्रभुजी के चरण-कमलों के समीप ही बैठे थे। गुरुदेव की भक्ति से ओत-प्रोत उनका हृदय अधिक न सह सका। आवेश में भरकर श्री करुणानिधान के आन्तरिक भावों का विचार किए बिना ही वे ताड़ना के स्वर में उस महात्मा से बोले—अरे नीच महात्मन्! मैं तुझे और तुझे यहां भेजने वालों को खूब जानता हूँ। इन करुणार्णव त्रिलोक-पावन की दिव्य शक्ति को तुम क्या समझ सकते हो? क्या देख सकते हो? तुम्हारे जैसों के ऐसे भाग्य कहां कि इनके दिव्य स्वरूप के दर्शन प्राप्त कर सको। फिर सम्मुख बैठी एक आठ वर्ष की बालिका की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मचारी जी ने कहा—अरे, तू उन सर्वशक्तिमान् की शक्ति को क्या देखेगा? यह बालिका ही तुझे सब कुछ दिखा देगी। आंख खोल कर देख—तेरे सामने यह कौन बैठी है? ब्रह्मचारी जी के ऐसा कहने के बाद ज्योंही उस महात्मा ने आंख उठा कर देखा तो बड़े आश्चर्य में पड़ गया। अब सम्मुख बालिका नहीं अपितु साक्षात् अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा एक दिव्य सिंहासन प बैठी दिखाई दी। तीव्र तम उपासना के बाद सिद्ध किये हुए भैरव ने भगवती से करबद्ध प्रार्थना की—माँ, क्या आज्ञा है? क्या सेवा करूं? भगवती ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी—बेटा भैरव, इस दुर्मन महात्मा को तीव्र ताड़ना देकर यहां से भगा दो। इसने नित्य-मुक्त परब्रह्म का अपमान करने का प्रयत्न किया है, यह इसकी परम दुर्मति है। माँ भगवती दुर्गा का आदेश पाते ही भैरव ने उस महात्मा का त्रिशूल उठा कर उसे पीटना प्रारम्भ किया। ताड़ना से भयभीत होकर महात्मा ने श्री प्रभुजी की ओर रक्षा के अभिप्राय से देखा तो उसे उनका सदाशिव स्वरूप दिखाई दिया। यह अलौकिक दृश्य देखकर उसे बोध हुआ और उन अगाध कृपासागर के चरणकमलों में गिरकर विनम्र करबद्ध प्रार्थना करने लगा—हे प्रभु आप के इस योगैश्वर्य को मैं नहीं जानता था। अतः अज्ञान में कहे गए कटु शब्दों के लिए बारम्बार क्षमाप्रार्थी हूँ। कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए। हे दयानिधे! भैरवजी की कृपा से ही मेरा संसार में मान है। मेरे सारे काम बन रहे हैं। अतः भैरवजी को मुझे लौटा देने की कृपा करें।

अकारण दयालु श्री प्रभुजी उसकी करुण-पुकार से द्रवित हो गए। उसका भैरव उसे लौटा दिया और महात्मा को एकदम अमृतसर छोड़कर अन्यत्र चले जाने की आज्ञा दी। महात्माजी श्री प्रभुजी का आदेश शिरोधार्य कर तत्काल अमृतसर में अन्यत्र प्रस्थान कर गये और उनको बहकाकर लाने वाला दुर्जन समुदाय भी निराश होकर लौट गया। परन्तु साथ ही इन सब लोगों के मन में यह धारणा बन गई कि रामलाल जी महाराज कोई साधारण बाह्मणन ही हैं अपितु कोई सर्व समर्थ पूर्ण पुरुष हैं जो अपने को इस वेश में छिपाए हुए हैं, जिनकी महिमा हर व्यक्ति नहीं जान सकता।

इस प्रसंग में ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द ने महात्मा को प्रताड़ना देने का जो कार्य किया वह भी प्रभुजी को प्रिय नहीं था। उस महात्मा के चले जाने के बाद श्री प्रभुजी ने ब्रह्मचारी जी को आज्ञा दी—तुमने हमारे सामने हमारी इच्छा के विरुद्ध अपनी शक्ति का परिचय दिया है। अतः तुम हमारे पास से चले जाओ। श्री प्रभु जी का यह कठोर आदेश सुनकर श्री ब्रह्मचारी जी ने विह्वल होकर उन कृपामय

के चरण कमलों में बारम्बार विनयपूर्वक प्रार्थना की—प्रभो आप सर्व-समर्थ हैं। आप अपने चरण-कमलों से छुड़ाकर मुझे कहाँ भेज रहे हैं? आपके चरण कमलों के अतिरिक्त मेरे लिए और कौन सा स्थान है? दीन बन्धु जी, कृपा करके बताइये कि मैं कहाँ चला जाऊँ? ब्रह्मचारी के इन करुणापूर्ण वचनों को सुनकर दयासागर जी को दया आ गई। बोले—बेटा, अब मेरे मुख से वचन निकल गया है अतः एक बार तुम्हें जाना ही है परन्तु शीघ्र ही लौटकर आजाओगे। तुम मौन होकर कहीं भी चले जाओ। जो भी प्रथम व्यक्ति तुम्हें बुलायेगा और भोजन करायेगा—तुम उसी के साथ यहाँ वापस आ जाना। वह व्यक्ति हमारा भक्त होगा और उसका यहाँ सब प्रकार से भला होगा।

ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी का गमन और श्री बालकृष्णदास जी पर अनुग्रह

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी का यह आदेश पाकर तत्काल ही ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी वहाँ से चल पड़े। इसी प्रकार चलते-चलते दो-तीन मील अमृतसर से आगे निकल गए। ब्रह्मचारी जी मौन होकर श्री कृपा-निकेतन के चरणकमलों का ध्यान करते हुए अर्धोन्मीलित नेत्रों से चले जा रहे थे। अमृतसर से काफी दूर निकल जाने पर मार्ग में एक बाग पड़ा, जिसमें बैरागी महात्माओं की छावनी पड़ी हुई थी। इस छावनी के महन्त श्री बालकृष्णदास बैरागी थे, जिनका आसन मध्य में लगा हुआ था, सिर पर सुनहरी छत्र था। उनकी जटाएँ बहुत लम्बी बढ़ी हुई नीचे लटक रही थीं। ब्रह्मचारीजी को वहाँ से निकलते देखकर महन्त बालकृष्ण दासजी ने पुकारा—ब्रह्मचारी, इधर आओ!

तुम किसके ब्रह्मचारी हो? अब कहाँ जा रहे हो? तुम्हारे अर्धोन्मीलित नेत्र तुम्हारी उच्च अन्तः स्थिति को प्रकट कर रहे हैं! यह महती कृपा तुम्हें कहाँ से उपलब्ध हुई है? तुम किसके शिष्य हो? इस समय ध्यान में तुम किसे देख रहे हो? महात्मा के इस प्रकार के वचनों को सुनकर ब्रह्मचारीजी ने उत्तर दिया—महाराज, जन-जन पर परम अनुग्रह करने वाले योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज का मैं शिष्य हूँ और उन्हीं सर्वशक्तिमान की परम कृपा से मुझे हर समय दिव्यानुभव होते रहते हैं। यह सुनकर महन्त बालकृष्णदास ने अत्यन्त आदरपूर्वक ब्रह्मचारी को अपने पास बैठाकर भोजन कराया। भोजनोपरान्त बालकृष्णदास ने अपनी लालसा प्रकट करते हुए ब्रह्मचारी जी से कहा—भाई अपने उन सर्वसमर्थ सद्गुरुदेवजी के चरणों में मुझे भी ले चलिए, जिससे उनकी परम कृपा को प्राप्त कर मैं भी कृतार्थ हो सकूं। श्री प्रभुजी के वचनों का स्मरण करके ब्रह्मचारी जी उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उनको श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में लिवा लाये। इस प्रकार प्रभुजी के आदेशानुसार उनका पुनरागमन हुआ प्रभुजी के पावन चरणों में। —क्रमशः

(आठ योगी से साभार)

मोक्ष का साधन वैराग्य

एक योग साधक

वैराग्य मोक्ष का साधन है यह दो प्रकार का बताया गया है इसमें पर वैराग्य के प्राप्त हो जाने पर प्रत्युदित ख्याति योगी अपने आप को कृतार्थ बना लेता है। इस वैराग्य के प्राप्त हो जाने पर ही गुणों का गुणों में अवसान हो जाता है और योगी विशुद्ध कैवल्य भाव को प्राप्त हो जाया करता है। उस समय प्रत्युदित ख्याति योगी विवेक ज्ञान रूप अपनी धारणा में स्थ हुआ इस प्रकार मानता है।

प्राप्त प्रापणीयं, क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः, छिन्नः श्लिष्ट पर्वा, भवसंक्रमो यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायते इति, ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यं एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।

अर्थात प्राप्त करने लायक वस्तु प्राप्त करली, क्लेश क्षीण कर दिये, पोरों से पोरों की तरह जुड़ा हुआ संसार चक्र मैंने काट दिया जिसके कारण जन्म और मरण होता था अब मैं नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव अजर अमर नित्य तत्व हूँ। इस प्रकार पर वैराग्य मोक्ष का नान्तरीयक सिद्ध हुआ। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में मन की चंचलता को स्वीकार करके अभ्यास और वैराग्य को मन की एकाग्रता का परम साधन माना है। गीता का यह प्रकरण इस प्रकार है। अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रश्न किया—

योऽयंयोगस्त्वया प्रोक्तः
साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि
चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण
प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये
वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्जुन ने कहा है मधु सूदन! साम्यत्वेन जो योग आपने कहा है वह सर्वथा ठीक है पर चंचलता से इस मन की स्थिरता मैं बिल्कुल नहीं देखता हूँ। हे कृष्ण! यह मन बहुत ही चंचल, बलवान एवं मथन करने वाला है। जिस प्रकार वायु को नहीं रोका जा सकता उसी प्रकार इस मन को भी नहीं रोका जा सकता है। अर्जुन के इस प्रकार प्रश्न करने पर भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया:

असंशयं महाबाहो
मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय
वैराग्येण च गृह्यते॥
असंयतात्मना योगो
दुष्प्राप इति मे मतिः॥

वश्यात्मना तु यतता

शक्योऽवाप्तु मुणायतः ॥

हे महाबाहु अर्जुन ! यह बात बिल्कुल सत्य है कि मन बहुत ही चंचल और कठिनता से वश में आने वाला और बहुत ही दुनिग्रही है। किन्तु अभ्यास और वैराग्य द्वारा पकड़ा जा सकता है । जो लोग असंयतात्मा हैं हे मेरा विचार है उनको योग कभी सिद्ध नहीं अर्जुन हो सकता और जिन्होंने अपने पर नियन्त्रण किया है वे प्रयत्न करते हुए अवश्य ही उपाय से इसे वश में कर सकते हैं, इसी सिद्धान्त को कठोप निषद में उपदेश करते हुए यम देव ने इस प्रकार कहा है।

यस्त्व विज्ञानवान्

भवत्य युक्तेन मनसा सदा ।

तस्येन्द्रियाण्य वश्यानि

दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति

युक्तेन मनसा सदा ।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि

सदश्वा इव सारथेः ॥

अर्थात जो मनुष्य अविज्ञानवान होता है अर्थात जिसका मन पर नियन्त्रण नहीं होता उस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में नहीं होतीं जिस प्रकार बिगड़े हुए घोड़े सारथी के वश में नहीं हुआ करते, इसके प्रतिकूल जो व्यक्ति ज्ञानवान है और युक्त मन वाला होता है उसकी इन्द्रियाँ वश में हुआ करती हैं जैसे अच्छे घोड़े सारथी के वश में हुआ करते हैं।

इस उपर्युक्त संवाद से यह भली प्रकार सिद्ध हो गया कि विरक्त और अभ्यास परायण योगी अपनी इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण प्राप्त करके अपनी प्रगति को ऊँचा उठा सकता है। और वह श्रेय से परम श्रेय का भागी बन ही सकता है। कदाचित भाग्यवश मनुष्य पर वैराग्य को प्राप्त हो जाय तो वह प्रकृति के गुण धर्मों से छूट कर अपने स्वरूप में अवस्थित हो ही जाया करता है। क्योंकि वैराग्य मोक्ष का नान्तरीयक माना गया है। योग शास्त्रों में जहाँ अभ्यास के भिन्न-भिन्न प्रकार मिलते हैं उसी प्रकार से सांकेतिक भाषा में भी वैराग्य का महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। यह इस प्रकार के छिपे हुए भाव हैं कि जिनको सहसा मनुष्य समझ नहीं सकता। वैराग्य शब्द का अर्थ है विगत राग हो जाना। ज्यों-ज्यों इन्द्रियाँ अपने विषयों में राग परायण होती जाती हैं त्यों-त्यों वे विषयों को छोड़ने में असमर्थ हो जाया करती हैं। इस विषय में हमारे पूर्व आचार्यों का इतिहास और स्मृति के रचयिताओं का एक सा मत है। श्री मनु महाराज ने अपनी मनुस्मृति में बिलकुल साफ और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है—

इन्द्रियाणां विचरतां,

विषयेष्व महारिपु ।

संयमे यत्नमातिष्ठे

विद्वान यन्तेव वाजिनाम् ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन

दोष मृच्छत्य संशयम् ।

सनियम्य तु तान्येव

तत सिद्धि नियच्छति ॥

न जातु कामः कामा-

नामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्ण वर्त्मेव

भूय एवाभिवर्द्धते ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च
नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्ट भावस्य
सिद्धि गच्छति कहिचित ॥
वशे कृत्वेन्द्रिय ग्रामं,
संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्था-
नाक्षिण्वन् योगतस्त्वतुम ॥
श्रुत्वा स्पृष्टवा चदृष्टवा च
भुक्त्वा घ्रात्वाचयो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा
स विज्ञयो जितेन्द्रिय ॥

अर्थात मनुष्य को चाहिये कि चित्त का अपहरण करने वाली इन्द्रियो को इस प्रकार वश में रखे जिस प्रकार सु-सारथी घोड़ों की रक्षा करता है। क्योंकि इन्द्रियों का अनुगामी होने से हजारों प्रकार के दोष पैदा हो जाया करते हैं और उनको संयम में ले आने पर जल्दी ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

मन में उत्पन्न हुयी कामनायें, कामनाओं के भोग से कभी भी शान्त नहीं होती, प्रत्युत और अधिक बढ़ती चली जाती है। जैसे अग्नि में घृत आदि हवि डालने से अग्नि और अधिकाधिक प्रज्वलित होती जाती है उसी प्रकार इन्द्रियों का उपभोग करने पर उनका लौल्य दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला जाता है, क्योंकि कभी भी अजितेन्द्रिय मनुष्य को त्याग, यज्ञ, नियम और तप सिद्ध नहीं हुआ करते। अतः साधक को चाहिये कि सारी इन्द्रियों के समूह और मन पर नियन्त्रण करके और योग के द्वारा अपने शरीर की रक्षा करते हुए कामनाओं को प्राप्त करे। जो मनुष्य सुन करके, स्पर्श करके, देख करके, और गन्ध ग्रहण करके न प्रसन्न होता है न ग्लानि को प्राप्त होता है, उसको जितेन्द्रिय समझना चाहिए। इन सब शास्त्रीय सिद्धान्तों को पढ़कर और सुन कर मन् एक ही विषय पर पहुंचता है कि इन्द्रियों का अपने विषयों में राग होना ही वासनिक प्रवृत्ति का मुख्य कारण बनता है यदि सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से विगत-राग हो जाय तो उनकी प्रवृत्ति कभी भी उनमें पुन हो नहीं सकती। इस विषय को इस प्रकार समझ लीजिये जैसे हमारी चक्षु इन्द्रियों की प्रवृत्ति सुन्दर रूप देखने में संलग्न है, तो वह हमारे को सुन्दर रूप की ओर ही आकृष्ट कर देगी और यदि उसी चक्षु इन्द्रिय के सामने मल मूत्रादि घृणित द्रव्य को लाया जाय तो वह उसको कभी भी देखना पसन्द नहीं करेगी। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय भी कभी उसका गन्ध ग्रहण करना, स्पर्श करना नहीं चाहेंगी, क्योंकि वह उनसे विगत राग है। अतः कदाचित किसी भाग्यवान साधक को वैराग्य प्राप्त हो जाय तो उसका उसकी इन्द्रियों पर स्वतः ही नियन्त्रण हो जाया करता है। हम सबको चाहिये कि हम जहाँ जिस-जिस अभ्यास में प्रयत्नशील रहते हैं उसी प्रकार वैराग्य के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए। क्योंकि वैराग्य ही अन्त में मोक्ष साधन बनता है।

वैराग्य साधना का अमर उपाय

वैसे तो वैराग्य साधन के लिए हमारे शास्त्रों में अनेकानेक उपाय वर्णित हैं किन्तु वे प्रायः साधकों के लिए फल प्रद नहीं रहते। इसका कारण मात्र यह है कि अधिकांश प्रायः सभी उपदेष्टा मनोनियन्त्रण का उपदेश किया करते हैं। मन पर नियन्त्रण करना तो ठीक है किन्तु कभी-कभी इस नियन्त्रण का ऐसा परिणाम होता है कि इन्द्रियों का वेग बलवान हो जाता है और वह नियन्त्रण की मर्यादा को तोड़ करके अपनी वासना के सर्वाधभूत विषयों की ओर निकलता है। इस बात को स्वयं जगदात्मा श्रीकृष्ण ने स्वीकार किया है।

> यततो ह्यपि कौन्तेय,
> पुरुषस्य विपश्चितः।
> इन्द्रियाणि प्रमाथीनि,
> हरन्ति प्रसभं-मनः॥

अर्थात् विद्वान लोग इन्द्रियों के नियन्त्रण का प्रयत्न करते रहते हैं फिर भी इन्द्रियों का वेग इतना बलवान होता है कि वह बहुत जल्दी मन को हर लेता है। इस बात को यों समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार तीव्र वेग वाली नदी के जल को बाँध लगा कर किसी जलाशय में रोक लेते हैं तो वह जल रुक तो जाता है पर वह अन्य जलाशयों के रूप में इकट्ठा होता रहता है किन्तु वह यदि जलाशय भी जब उस से परिपूरित हो जाता है और जल के वेग से कदाचित् बँधा का बाँध टूट जाय तो इस जल को रोकने की ताकत किसी में नहीं होती। टूटा हुआ वह बाँध हजारों गाँवों और शहरों को नष्ट करता हुआ समुद्र की ओर भाग निकलता है। समुद्र में पहुँच कर ही वह विलय हो जाता है। इससे अच्छा उपाय तो यही था कि उस जल को इतने बड़े बाँध से रोकने की चेष्टा नहीं की जाती प्रत्युत जहाँ-जहाँ जिन क्षेत्रों में जल की भारी आवश्यकता थी, उन क्षेत्रों में उचित संविधान के साथ बाँट दिया जाता तो उस जल का वेग शान्त हो जाता और कृषि आदि कार्यों में उसका उपयोग होता। इसी प्रकार इन्द्रियों के वेग को बिना लक्ष्य के किसी प्रकार मनुष्य रोक दे तो जब तक वह वेग रुका रहेगा ठीक है कदाचित् वह नियन्त्रण की मर्यादाओं को तोड़कर वह निकला तो इतने वेग से वह भागेगा कि उस पर फिर नियन्त्रण करना काबू से बाहर हो जायेगा। इसलिए योगाभ्यासी को चाहिये कि वह अपने अभ्यास बल से उस प्रवाह को अन्तर भूमिकाओं में परिवर्तित करता रहे, जिससे इन्द्रिय ग्राम इतना सबल न होने पाये जिससे ऊँचे नियन्त्रण की आवश्यकता अनुभव में आये। इसी का निर्देश हमारे आचार्यों ने दिया है। कठोपनिषद् में भगवान यमराज ने नचिकेता को उपदेश देते हुये स्पष्ट शब्दों में कहा है—

> पराँचि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू-
> स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
> कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मान् मैक्षदावृत्त
> चक्षुरमृतत्वमिच्छन्।

अर्थात् परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बाहर की ओर देखने वाली बनाया है, इसलिए इनका वेग बाहर की ओर चलता रहता है। बाहर की ओर जितने विषय हैं वह विषयों का मोटा रूप है जैसे गन्ध तन्मात्र का स्थूल रूप जल है। रूप तन्मात्र का स्थूल रूप अग्नि है। स्पर्श तन्मात्र का स्थूल रूप वायु है और शब्द तन्मात्र का स्थूल रूप आकाश है। हमारी इन्द्रियाँ पंच तन्मात्राओं के स्थूल रूप का ही दर्शन करती हैं न कि सूक्ष्म का। यदि ये पंच भौतिक स्थूल

भोग को छोड़कर सूक्ष्म तन्मात्राओं का दर्शन व अनुभव करने लग जाय तो थोड़े ही दिन के बाद ये सब इन्द्रियाँ स्थूल विषयों से विगत राग हो जायेंगी। इसलिए हमारे योगाचार्यों ने सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात रूप दो योगों का वर्णन किया है। जो लोग संप्रज्ञात योग में प्रवेश कर जाते हैं उनकी इन्द्रियाँ सूक्ष्म तत्त्वों का अनुभव करने लग जाया करती हैं। और ज्यों-ज्यों सूक्ष्म तत्त्वों का अनुभव करती हैं त्यों-त्यों उनके स्थूल भोग छूटते चले जाते हैं। इस अभ्यास के क्रमानुसार ज्यों-ज्यों योगाभ्यासी योगी उत्तरोत्तर ऊँची भूमिकाओं में प्रवेश करता है त्यों-त्यों निम्न श्रेणी की भूमिकाओं से वह विगत स्पृह होता जाता है। और उसका राग उच्च अन्तर भूमिकाओं में बढ़ता जाता है। इस तरह योगी अपने चित्त के प्रवाह को जो स्थूल जगत की ओर तीव्रता से प्रवाहित हो रहा था उसको सूक्ष्म जगत की ओर प्रवाहित कर लेता है। प्रवाह चलता रहता है चित्त की अपनी ताकत का सदुपयोग होता रहता है। इस प्रकार से वह चित्त उत्तरोत्तर उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करता हुआ हमारे परम कल्याण का कारण बन जाता है। कदाचित हम अपने चित्त को कहीं भी प्रवाहित न करें तो कभी भी इकट्ठी की हुई हमारी चित्तशक्ति प्रस्फुटित हो सकती है और इस प्रकार की बिखरी हुई चित्त-शक्ति परिणाम में दुःखद रहेगी। इसीलिए योगी को चाहिये कि वह अपने को निम्न श्रेणी की भूमिकाओं से उत्तम भूमिकाओं की ओर बढ़ाता चला जाय। जिससे स्वतः ही उसका मन निम्न श्रेणी से विगत राग हो जाय।

भगवान पतञ्जलि देव ने अपने योग सूत्र में लिखा है—

वितर्क विचारानन्दास्मिता
रूपानुगमात् संप्रज्ञातः।

इस सूत्र पर व्यास देव ने अपने भाष्य में ये पंक्तियाँ लिखी हैं।

वितर्कः चित्तस्यआलम्बने स्थूल आभोगः, सूक्ष्मो विचारः, आनन्दो ह्लादः। एकात्मिका संविद्-अस्मिता तत्र प्रथमश्चतुष्टया नुगत समाधिःस वितर्कः, द्वितीयो वितर्क विकलः सविचारः। तृतीयो विचार विकलः सानन्दः चतुर्थस्त द्विकलोऽस्मिता मात्र इति।

सर्व एते सालम्बनाः समाधय वितर्क विचार आनन्दानुगत समाधि सालम्ब है। जिस समय योगी अपने सार्वदेशिक मन को एकाग्र करके संप्रज्ञात योग की ओर बढ़ना आरम्भ करने लगता है ज्यों-ज्यों ऊपर की भूमिकाओं में प्रवेश करता जाता है त्यों-त्यों नीचे की भूमिकाओं को छोड़ता जाता है। जिस प्रकार से गाँव का रहने वाला एक व्यक्ति गाँव के वातावरण को छोड़कर शहर में प्रवेश करता है तो क्रमशः ग्रामीण वातावरण को भूल जाता है और उसे फिर नगरीय जीवन ही पसन्द आ जाता है।

इसी प्रकार बाह्य वासना दोष दर्शी व्यक्ति अन्तर्मुखता को प्राप्त करके बाह्य वासनिक भोगों को बिल्कुल छोड़ देता है। संप्रज्ञात योग की प्रथम श्रेणी में प्रवेश करके वह साधक सार्वभौम से चित्त को इकट्ठा करके अपने भीतर के दर्शन में लगाता है वह सार्वभौम से निवृत्त होकर वितर्कानुगत योग में प्रवेश करता है। वितर्कानुगत योग में उसको तन्मात्राओं से सम्बन्ध रखने वाले बड़े-बड़े अनुभव होने लग जाते हैं और उन

(शेष पृष्ठ 48 पर)

करुण पुकार

रचयिता—श्री जनक प्रसाद द्विवेदी

पता न प्रभु का ज्ञात है, कैसे लिखूँ बनाय ।
विनय पत्रिका प्रभु तक, को कैसे पहुँचाय ।।

जय दीन दयाला, परम कृपाला, भारत एक सुन लीजे ।
बालक ये तेरे दुःखी घनेरे, आकर दर्शन दीजे ।।
करुणा के सागर, सब गुण आगर, बार-बार हम विनय करें ।
बिन दरश निहारे नैन बिचारे, कैसे यह अब धीर धरें ।।1

सब बालक तेरे, घोर अँधेरे, भटक रहे कित जायें ?
मन-बिथा समाये, बिना सहारे, प्रभु को कहाँ सुनावें ।।
जन-जन के प्यारे, शिष्य तुम्हारे, भटक-भटक कर हारे ।
मुख वदन मलीना, कातर दीना, चन्द बिना ज्यों तारे ।।2

घर आँगन सूना, दीखे कहुन, सूझै और न बाता ।
धीरज आधारा, मंत्र तुम्हारा, तुम्ही पिता अरु माता ।।
बिन आस बिचारे, बालक हारे, रो-रो दिवस बितावें ।
जल नैन गिरावें, रोक न पावें, पलकन नाहि लगावें ।।3

कोउ बाय सँवाई, आग लगाई, गुरुचरनन चितदीने ।
आश्रम के वासी, बने उदासी, मलिन मुखन को कीने ।।
सुनसान भयानक, कूजत ना खग, पवन सुखद ना पावें ।
प्रभु योगेश्वर श्री की रामलाल की, नो जयकार सुनावें ।।4

गुरु पूरनमासी, अधिक उदासी, दे जाती हर मन में ।
विरहा की ज्वाला, विकट कराला, छा जाती हर तन में ।।
सब नीर बहाते, वापिस जाते, तोड़ आस की डोरी ।
प्रिय चन्द्र तुम्हारे, बिना निहारे, चुगती अगिन चकोरी ।।5

वह दृश्य मनोहर सब विधि सुन्दर जभी ध्यान में आता ।
कोई पूजा करता, चला उमड़ता नाच-नाच कर गाता =
रेलों पर रेला, ठेलमठेला, गुरु-दर्शन चित दीने ।
दुर्भाग्य हमारे, बिना सहारे, बिन गुरुवर, के कीने ।।6

है प्राण अधारा, हृदय हमारा, तड़प तड़प रह जाता ।
चलदल सा चंचल, बिना तेरे बल, ठोकर दर-दर खाता ।।
क्यों हमें भुलाया, तरस न आया, निठुर नहीं थे ऐसे ।
दर्शन भये सपना, ना कोई अपना, बिना पंख खग जैसे ।।7

दीनन के दाता, तुम पितु माता, कहाँ गई वह करुणा ।
शीतल गंगाजल, जैसे निर्मल, बनी हुई वह वरुणा ।।
क्यों छोड़ दिया है, मोड़ दिया है, नेह प्यार का बाना ।
भक्तों के साईं, हमरे साईं बनना और बनाना ।।8

हे दया निधाना, किया बहाना, अमर लोक का जाना ।
दारुण दुःख हंता ! हे भगवंता ! तुम्हें पड़ेगा आना ।।
ये दीन बिचारे, बिना सहारे, रो-रो नैन बहाते ।
सिद्धगुफा के, दर पर जाके, पटक-पटक सिर आते ।।9

बदनाम करोगे, छोड़ सकोगे, आश्रम की मर्यादा ।
प्रभुजी के प्यारे, रतन हमारे, भूल गये क्या वायदा ।।
यह योग पताका, धरनि निपाता, आकर इसे बचाओ ।
धरम अधीरा, योग शरीर, धर करके लहराओ ।।10

आश्रम की धरनी, पावन करनी, तुमको प्रभो बुलाती ।
कदम की छैया, कृष्ण कन्हैया, कहकर माथ हिलाती ।।
गौ अरु गौशाला, जिसे सँभाला, तुमने तन मन देकर ।
वे गायें रँभायें, तुम्हें बुलायें, नाम तुम्हारा लेकर ।।11।।

वह यज्ञ वेदिका, धर्म सेविका, बिना तुम्हारे सूनी ।
चोंच पसारे, खग गण सारे, चुप बैठे बातूनी ।।
प्रभु सेवा आरती, दुःख निवारती, तुम बिन कौन करेगा ?
प्रभु रामलाल की, यौगिक थाती, तुम बिन कौन धरेगा ?12

कण-कण से आती, वहाँ सुनाती, गीता की वह बानी ।
माला भी अर्पित, चित्त समर्पित, रह गई एक कहानी ।।
आओ प्रभु आओ, मोहन आओ, लीला बहुत दिखाली ।
सब को हरसाओ, रस बरसाओ, योग वाटिका माली ।।13

वह द्वार अधूरा, हुआ न पूरा, महिला आश्रम वाली ?
सूखी सब खेती, गई न जोती, नहिं दिखती हरयाली ।।
दालान अटारी, भारी भारी, सब सुन सान पड़े हैं ।
स्वर्गोपम धरनी, क्या हुई करनी, कवलित काल खड़े हैं ।।14

ऋषिकेश सँवारे, फिरी दुहाई, जग में रामलाल की।
जिनके त्रिशूल से, एक फूल से, मिटती लिखी भाल की॥
पर समझ न आया, काहे बुलाया, हे नेपाल निवासी।
सब बाल झमेले, हुए अकेले, छाई अगह उदासी॥15

नेपाल निवासी, घट-घट वासी, कृपा प्रभु अब कर दो।
गुरु चन्द्रमोहन को, कृपा करन को, देकर झोली भर दो॥
हे संकट हारी, हे त्रिपुरारी, तुम हो दीन दयाला।
मन की मुराद को, प्रभु प्रसाद से, पूरन करो कृपाला॥16

जय हे सिद्धेश्वर, हे विश्वेश्वर, बार-बार गुन गाऊँ।
जय हे योगेश्वर, हे परमेश्वर, मन वाँछित फल पाऊँ॥
नव रूप भेष धर, उन्हें भेजकर, भक्तों को हरसा दो।
फिर एक बार, प्रभु रामलाल की, जय जयकार करा दो॥17॥

(पृष्ठ 45 का शेष)

सब दृश्यों को देखता हुआ वह योगी शनैः-शनैः विचारानुगत योग का अधिकारी हो जाता है और उसके सामने देवलोक के दृश्य आने लगते हैं और वह स्वर्गीय दृश्यों को देखा करता है अतः मनुष्य लोक के दृश्यों से उसका वैराग्य हो जाता है।

विचारानुगत समाधि से जिस समय आनन्दानुगत समाधि में प्रवेश करता है तो उसे स्वर्गीय दृश्यों से भी स्वाभाविक अरुचि होने लगती है तथा शनैः-शनैः उसको स्वर्गीय दृश्यों से भी वैराग्य हो जाता है।

इसी प्रकार आनन्दानुगत समाधि का योगी आनन्दानुगत समाधि में प्रवेश करता है तो आनन्दानुगत के विषय को छोड़कर अस्मि प्रत्यय को आधार बनाकर उसी में विलीन रहता है। इस श्रेणी में आकर वह दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्ण होकर वशीकार संज्ञा वैराग्य को प्राप्त करता है। इससे आगे आत्मा का निजी स्वरूप है। इसके लिए महर्षि पतंजलि ने "तदाद्रष्टु स्वरूपेऽव स्थान" कह करके अभिव्यक्ति किया है। अस्मितानुगत योग की अस्मि-वृत्ति निरोधोन्मुखी वृत्ति कहलाती है यह वृत्ति अन्य सभी वृत्तियों का उपशमन करके स्वयं भी शान्त हो जाया करती है। ऐसी स्थिति में आत्मा केवल भाव को प्राप्त होती है यहीं पर वैराग्य की स्थिति है।

इसी को महर्षि पतंजलि ने "तत्पर पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्, कहकर अभिव्यक्ति किया है इसी वैराग्य को मोक्ष का नान्तरीयक वर्णन किया गया है। यही परिस्थिति है जिसके लिए मनुष्य जीवन-भर प्रयत्नशील रहता है। किसी भाग्यवान जीव को जन्म से ही विरक्ति की भावनायें पैदा हो जाती है यह उसका पूर्व जन्म कृत अभ्यास ही होता है। संसार में इस प्रकार के व्यक्ति कम ही देखने को मिलते हैं। जिनके अन्दर जन्म ही गुण वितृष्णता हो किन्तु जो लोग श्री गुरुदेवजी कृपा को प्राप्त करके सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी बने रहते हैं वे लोग शनैः-शनैः गुण वैतृष्णता को अवश्य ही पा जाया करते हैं। अतः हर साधक को यह चाहिए कि वह अपने आपको गुण वितृष्ण बनाने के लिए सम्प्रज्ञात योग विद्यार्थी बने तभी वह "तत्पर पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्" को प्राप्त हो सकेगा।

★

दाम्पत्य जीवन और योग

☐ श्रीमती सरिता भारद्वाज एम. ए. बी. एड.

पाशुपत दर्शन के अनुसार निष्क्रिय ब्रह्म में जब शक्ति संचरण होता है तो सृष्टि का स्पन्दन होता है। शिव भी बिना शक्ति के शव हैं। जगतगुरु शंकराचार्य सौन्दर्य लहरी में शक्ति के सनातन रहस्य का उद्‌घाटन करते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि
भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेत् एवं देवो न खलु
कुशलः स्पन्दितुमपि।

अर्थात् जब शिव शक्ति से संयुक्त होते हैं तभी उनमें क्रिया हो पाती है। शक्ति के अभाव में सर्व सामर्थ्यवान शिव भी सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते। षट्‌चक्र-भेदन के द्वारा शक्ति का संचार और उत्थान होता है। षट्‌चक्रसमूह को तन्त्रों में 'कुल' नाम से अभिहित किया गया है। 'कुल' शक्ति का पर्याय भी है—'कुल शक्ति समख्याता।' नारी शक्ति का मूर्त रूप है। समाज में वह मां, पत्नी, भगिनी तथा प्रेमास्पदा के रूप में मनुष्य के हृदय की प्रेरणास्रोत बनती है। जिनके जीवन में शक्तिरूपा नारी की अनुकूलता नहीं हो पाती, उनका ऐहिक जीवन नारकीय बन जाता है। पारस्परिक झगड़े और अविश्वास के फलस्वरूप समस्त सुख के साधन दुःख रूप बन जाते हैं जिन भाग्यवानों का मन शक्ति से अनुकूलता प्राप्त कर [illegible] है उनका लौकिक उत्कर्ष होता चला [illegible] है। साधना के क्षेत्र में दाम्पत्य जीवन [illegible] नारकीय भोग और कलह परायण है [illegible] विषपान करने की कोई आवश्यकता नहीं [illegible] उन्हें प्रतिदिन मृत्यु के साक्षात् दर्शन [illegible] रहते हैं।

गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों का [illegible] है विवाह-संस्कार के समय मन्त्र में प्रार्थना [illegible] जाती है कि वर-वधू का हृदय और [illegible] समान हो। उस समय वर-वधू इस [illegible] पर चलने की प्रतिज्ञा भी करते हैं किन्तु [illegible] समय बाद ही घर सुख, शांति तथा [illegible] क्रिया-सम्पादन करने की यज्ञ-स्थली [illegible] के स्थान पर धन-सम्पत्ति के बँटवारे [illegible] ईर्ष्या-द्वेष के साक्षात् अंगारे बन जाते [illegible] योगमार्ग में पुरुष और नारी ऋण और [illegible] विद्युत की धाराओं के समान हैं। हमारे [illegible] साहित्य में अर्धनारीश्वर शिव की कल्पना [illegible] की गयी है यह कल्पना योग साधना का [illegible] मन्त्र है। पुरुष के शरीर में कुण्डलिनी [illegible] नारी के रूप में सदा विद्यमान रहती है। [illegible] नारी के शरीर में ज्ञान के रूप में शिव [illegible] सदा विद्यमान है। यह शिव और शक्ति [illegible] सहस्रार में मिलता है, तब ऊर्जा का विस्फोट [illegible] होकर अनन्त शक्तियाँ और छिपी हुई [illegible] सम्भावनायें प्रकट हो जाती हैं।

आत्म-निवेदन

'सिद्धयोग' इस प्रवेशाङ्क विशेषांक के रूप में अपने जीवन के 25 वर्ष पूरे करके 26वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी की कृपाओं के फलस्वरूप ही इसका जन्म हुआ था। और उनकी ही कृपाओं एवं भक्ति-सुधा का पान करके अनेक प्रकार की बाधाओं और दुरूहताओं के बावजूद निरन्तर इसका प्रकाशन जारी रहा। यह सभी जानते हैं कि कोई भी संस्था ऐसे दार्शनिक पत्र को किसी आर्थिक लाभ की दृष्टि से प्रकाशित नहीं करती किन्तु प्रकाशित करती है संस्था के लोक-हितकारी और मानव चरित्र-निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्तों और जीवन-मूल्यों के प्रचार-प्रसार के लिए।

'सिद्धयोग' का भी एकमात्र लक्ष्य यही रहा कि वह यौगिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार करने वाली अपनी संस्था 'श्री सिद्ध गुफा' का गत 25 वर्षों के गौरव बढ़ाने का साधन बने। मात्र इसी हेतु की पूर्ति में लाखों रुपयों का घाटा श्री गुरुदेवजी स्वयं वहन करते रहे। ग्राहक भाई-बहनों से प्राप्त धन राशि भी किसी अंश में इसके प्रकाशन का आधार बनी रही। भले ही यह अपर्याप्त रही हो फिर भी इसका अपना एक महत्व रहा है, विशेषकर ऐसे पत्र के प्रकाशन में जिसमें कोई विज्ञापन तक न लिया जाता हो। विद्वान लेखक और रचनाकार बन्धुओं का भी जो अमूल्य सहयोग इसे मिलता रहा वह भी गुरुदेव की कृपाओं का ही फल रहा।

इसके अतिरिक्त सम्पादकीय-विभाग के उस सहयोग तथा श्रम-साधना को भी कैसे भुलाया जा सकता है जो गत 25 वर्षों से बिना किसी आर्थिक लाभ की आकांक्षा के प्राप्त होता रहा है, यह भी श्री गुरुदेवजी का सौजन्य ही रहा कि जो कुछ भी इस दिशा में व्यय होता रहा, उसका वहन भी 'कर्मयोग-प्रकाशन' नामक संस्था वहन करती रही है। आगे भी गुरु-कृपा से इन सभी क्षेत्रों का यथा-वत् सहयोग प्राप्त करते हुए सिद्धयोग गुरुदेव की स्मृति-स्वरूप निरन्तर चलता रहेगा ऐसी अपेक्षा है।

गुरुदेव के प्रत्यक्ष सहयोग के प्रतीक रूप में सिद्धयोग के द्विवार्षिक, वार्षिक, आजीवन ग्राहक तथा उसके लिए अपनी रचनायें नियमित रूप से भेजते रहने वाले लेखकगण के भी हम आभारी रहेंगे। साथ ही अपेक्षा करते हैं कि आगे भी सभी क्षेत्रों से हमें यह सहयोग मिलता रहेगा।

प्रकाशक एवं मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिंग प्रेस, बसई काजी, राजगंज आगरा से मुद्रित एवं श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा) से प्रकाशित।